विवेक-ज्योति

वर्ष ४०, अंक ९ सितम्बर २००२ मूल्य रु. ६.००

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छत्तीसगढ़)
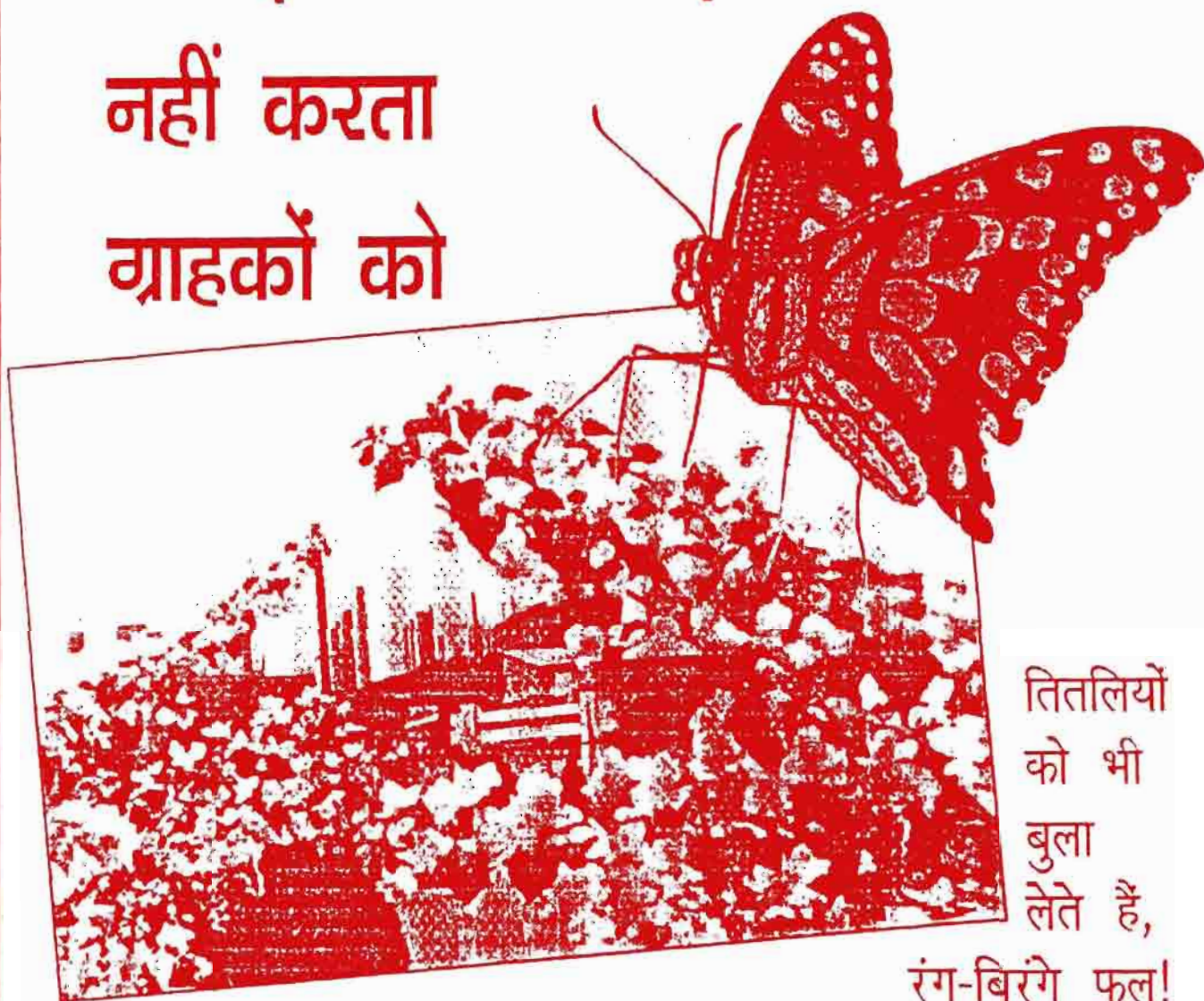
॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

सितम्बर २००२

प्रबन्ध-सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी विदेहात्मानन्द

वर्ष ४०
अंक ९

वार्षिक ५०/- एक प्रति ६/-

५ वर्षों के लिए – रु. २२५/-
आजीवन (२५ वर्षों के लिए) – रु. १,०००/-
विदेशों में – वार्षिक १५ डॉलर, आजीवन – २०० डॉलर
(हवाई डाक से) १०० डॉलर (समुद्री डाक से)

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर – ४९२ ००१ (छ.ग.)

दूरभाष : २२५२६९, ६३६९५९, २२४११९

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग आफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ५४६६०३)

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम
विज्ञानानन्द मार्ग, मुट्ठीगज,
इलाहाबाद - २११००३ (उ.प्र.)
दूरभाष ४१३३६९

निवेदन

प्रिय बन्धु,

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, इलाहाबाद की स्थापना पूज्यपाद स्वामी विज्ञानानन्द महाराज (१८६८-१९३८) द्वारा विश्ववन्द्य स्वामी विवेकानन्द की इच्छानुसार हुई थी। तब से आज तक यह आश्रम जनता जनार्दन की सेवा बिना किसी धर्म, जाति और वर्ण के भेदभाव का विचार किये करता आ रहा है।

धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक गतिविधियों के अतिरिक्त यह सेवाश्रम एक सार्वजनिक ग्रंथालय तथा वाचनालय का संचालन कर रहा है। ग्रंथालय में २८,५०० पुस्तकें हैं, जिनमें धर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य के ग्रन्थों के साथ विज्ञान, कला, वाणिज्य, चिकित्सा तथा अभियांत्रिक निकाय की पाठ्य पुस्तकें भी शामिल हैं। वाचनालय में ३७ पत्रिकाएँ, १४ दैनिक समाचार पत्र आते हैं। ग्रन्थालय की सदस्य संख्या ७४४ है। वाचनालय का प्रतिदिन प्रायः ७० व्यक्ति लाभ लेते हैं।

यह सेवाश्रम एक चिकित्सा केन्द्र का भी संचालन कर रहा है, जिसमें सामान्य चिकित्सा के साथ ही नेत्र रोग, दन्त रोग, चर्म रोग, बाल रोग, स्त्री तथा प्रसूति रोग, अस्थि रोग तथा नाक-कान-गला रोग के विशेषज्ञ अपनी सेवाएँ प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ होमियोपैथिक, ई.सी.जी., अल्ट्रासाउन्ड, पैथालॉजी, फिजियोथेरेपी तथा बच्चों के टीकाकरण आदि की सुविधाएँ भी उपलब्ध हैं। प्रतिदिन प्रायः ३०० मरीज इस चिकित्सा सुविधा का लाभ उठाते हैं।

हमारी आवश्यकताएँ : चिकित्सा केन्द्र में एक बड़ी आवश्यकता एक आपरेशन थियेटर की तथा २० शय्या से युक्त इनडोर वार्ड्स की तथा एक एक्स-रे मशीन की है। इसके लिये वर्तमान चिकित्सा केन्द्र के ऊपर एक मंजिल और ले जाने की है। इसी प्रकार ग्रन्थालय और वाचनालय में छात्र-छात्राओं की बढ़ती संख्या को देखते हुए उसकी भी विस्तार की बड़ी आवश्यकता अनुभव की जा रही है। ग्रन्थालय तथा वाचनालय का विस्तार पीछे की ओर किया जायेगा तथा उसके ऊपर वर्तमान सभागृह का विस्तार युवा-सम्मेलन, आध्यात्मिक शिविर आदि के आयोजन की सुविधा प्रदान करेगा।

अनुमानित व्यय :

१. ग्रंथालय तथा सभागृह के विस्तार पर	१८ लाख रूपये
२. चिकित्सा केन्द्र में आपरेशन थियेटर, पुरुष तथा महिला वार्ड और एक्स-रे मशीन पर	२२ लाख रूपये

इस प्रकार कुल ४० लाख रूपये की आवश्यकता है। आपसे हमारा अनुरोध है कि इस पुनीत कार्य में दान प्रदान करें जिससे यह सेवाश्रम अपनी सेवा का अधिकाधिक विस्तार कर सके। सेवाश्रम को दिये गये दान आयकर अधिनियम १९६१ की धारा ८० जी के अन्तर्गत आयकर से मुक्त हैं। आप अपना दान चेक/ड्राफ्ट द्वारा 'रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम' के नाम पर भेजने का कष्ट करें।

आप सबकी प्रभु से मंगल कामना करते हुए,

प्रभु सेवा में आपका

स्वामी निखिलात्मानन्द
सचिव

नीति-शतकम्

सन्तप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते ।
स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते ।।६७।।

अन्वयः – सन्तप्त-अयसि संस्थितस्य पयसः नाम अपि न ज्ञायते, तत् एव नलिनी-पत्र-स्थितं मुक्ताकारतया राजते, तत् स्वात्यां सागर-शुक्ति-मध्य-पतितं मौक्तिकं जायते । प्रायेण अधम-मध्यम-उत्तम गुणः संसर्गतः जायते ।

भावार्थ – जल की बूँद यदि गर्म लोहे के टुकड़े पर पड़े तो उसका नामो-निशान तक नहीं रह जाता, वही यदि कमल के पत्ते पर पड़े, तो मोती का आकार लेकर सुशोभित होती है और यदि वह स्वाति नक्षत्र के समय समुद्र की सीपी के मुख में पड़ जाय, तो उससे मुक्ता उत्पन्न होती है – प्रायः संसर्ग से ही अधम, मध्यम तथा उत्तम गुणों की प्राप्ति होती है।

प्रीणाति यः सुचरितैः पितरं स पुत्रो
यद्भर्तुरेव हितमिच्छति तत्कलत्रम् ।
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं य-
देतत्त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते ।।६८।।

अन्वयः – यः सुचरितैः पितरं प्रीणाति स पुत्रः, यत् भर्तुः हितम् इच्छति तत् एव कलत्रम्, यत् आपदि सुखे च समक्रियं तत् मित्रम् – जगति पुण्यकृतः (एव) एतत् त्रयं लभन्ते ।

भावार्थ – जो अपने भले कर्मो से पिता को प्रसन्न करता है वही पुत्र है, जो पति का कल्याण सोचती रहती है वही पत्नी है, जो विपत्ति तथा सुख दोनों ही समय एक-सा आचरण करता है वही मित्र है – इस संसार में ये तीनों ही बहुत पुण्य किये हुए लोगों को ही मिलते हैं।

– भर्तृहरि

मातृ-वन्दना

– १ –

अब जागो माँ कुण्डलिनी ।
सर्पिणी रूप धारण कर, कब से सोई हो जननी ।।

अपना कर मार्ग सुषुम्ना, क्रमशः ऊपर को उठना,
चिर दिन का तमस मिटाकर, उत्फुल्ल करो उर नलिनी ।।

चिन्मयी चारु काया धर, आसीन वहीं तुम होकर,
मेरे जीवन में प्रतिक्षण, छेड़ो अनहत वीणाध्वनि ।।

– २ –

आनन्दमयी माँ आओ,
अन्तर का पद्म खिलाओ,
फैला है घोर अँधेरा,
आलोक रश्मि बिखराओ ।।

आशा की मृगतृष्णा में,
मैं दौड़-दौड़कर हारा,
मुश्किल में पड़ा हुआ हूँ,
बस तेरा एक सहारा;
भ्रम दूर करो, अपनाओ,
आनन्दमयी माँ आओ ।।

मैं भटक रहा चिर दिन से,
माया के गलियारों में,
तुमको बिसरा जीवन से,
सुख-दुख के संसारों में;
अब श्रेय मार्ग दिखलाओ,
आनन्दमयी माँ आओ ।।

– *विदेह*

हिन्दू की विशेषता

स्वामी विवेकानन्द

भारत में हिन्दुओं ने कभी धार्मिक उत्पीड़न नहीं किया, बल्कि उन्होंने विश्व के सभी धर्मो के प्रति अद्‌भुत आदर-भाव रखा। जब हिब्रू जाति के कुछ लोग स्वदेश से भगाये गये थे, तब हिन्दुओं ने उन्हें शरण दी, केरल में वे यहूदी अब भी हैं। कभी उन्होंने नष्टप्राय ईरानियों के अवशिष्ट अंश का स्वागत किया और वे लोग आज भी मुम्बई के आधुनिक पारसियों के रूप में हमारे अंग होकर विद्यमान हैं। ईसा मसीह के शिष्य सेन्ट थॉमस के साथ आने का दावा करनेवाले ईसाई लोगों को भी भारत में रहने तथा अपनी विचारधारा सुरक्षित रखने की अनुमति दी गयी। उनकी एक बस्ती अब भी भारत में है। यह सहिष्णुता का भाव यहाँ न मरा है, न मरेगा और न मर सकता है।

सम्भव है तुम द्वैतवादी हो और मैं अद्वैतवादी। सम्भव है कि तुम अपने को भगवान का नित्य दास समझते हो और दूसरा यह कहे कि मुझमें और भगवान में कोई अन्तर नही है – दोनो ही हिन्दू और सच्चे हिन्दू है। यह कैसे सम्भव है? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए उसी महावाक्य का स्मरण करो – **एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**।

वेद में पूछा गया है – **कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वम् इदं विज्ञातं भवति** – ऐसी कौन सी वस्तु है, जिसका ज्ञान होने पर सब कुछ ज्ञात हो जाता है? इस प्रकार, हमारे जितने शास्त्र हैं, जितने दर्शन हैं, सबके सब उसी के निर्णय में लगे हुए हैं, जिनके जानने से सब कुछ जाना जा सकता है।

हिन्दू लोग साहसी थे और उन्हें इस बात का श्रेय देना होगा कि वे अपने सभी विचारों को बड़े साहस के साथ सोचते थे, इतने साहस के साथ कि उनके विचार की एक चिनगारी मात्र से पश्चिम के तथाकथित साहसी दार्शनिक डर जाते हैं! इन आर्य मनीषियों के बारे मे प्रोफेसर मैक्समूलर ने ठीक ही कहा है कि ये लोग इतनी अधिक ऊँचाई तक चढ़े, जहाँ केवल उनके ही फेफड़े साँस ले सकते थे, दूसरों के फेफड़े तो फट गये होते! जहाँ भी बुद्धि ले गयी, इन धीर पुरुषों ने उसका अनुरागपूर्वक अनुसरण किया, उसके लिये कोई त्याग उठा न रखा। सम्भव था कि इससे उनके हृदय के चिरपोषित अन्धविश्वास चूर चूर हो जाते, पर उन्होंने इसकी चिन्ता न की; इसकी भी परवाह न की कि समाज उनके बारे में क्या सोचेगा, क्या कहेगा! वे तो साहसी थे। उन्होंने जिसे ठीक और सत्य समझा, उसी की चर्चा की और प्रचार किया।

प्राचीन हिन्दू लोग अद्‌भुत विद्वान् थे – मानो सजीव विश्वकोष! वे कहते थे – 'विद्या यदि किताबों में ही रहे और धन यदि दूसरों के हाथ में रहे, तो कार्यकाल उपस्थित होने पर वह विद्या भी विद्या नहीं है और वह धन भी धन नहीं है।'

पुस्तकस्था तु या विद्या परहस्तगतं धनम्।
कार्यकाले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद्धनम्।।

हिन्दू धर्म में एक राष्ट्रीय भाव देखने को मिलेगा – वह है आध्यात्मिकता। दुनिया के किसी अन्य धर्म में, किसी अन्य धर्मग्रन्थ में ईश्वर की परिभाषा करने में इतनी शक्ति लगायी गयी हो, ऐसा देखने में नहीं आता। उन्होंने इस प्रकार आत्मा का आदर्श निर्दिष्ट करने की चेष्टा की है कि कोई पार्थिव भाव इसे कलुषित नहीं कर सकता। आत्मा दिव्य है और उसमें कभी मानवीय भाव आरोपित नहीं किया जा सकता।

आर्य लोग सदैव अपनी आत्मा में ही ब्रह्म को खोजते रहे हैं। बाद में यह उन लोगों की स्वाभाविक विशेषता बन गयी। और यह विशेषता उनकी कलाओं तथा उनके सामान्यतम आचरणों में भी व्यक्त हुई। आज भी जब हम धार्मिक मुद्रा में बैठे किसी व्यक्ति का यूरोपीय चित्र देखते हैं, तो पाते है कि चित्रकार ने उसकी आँखों को ऊर्ध्वोन्मुख दिखाया है, मानो वह प्रकृति से बाहर, आकाश की ओर ईश्वर की खोज के लिये देख रहा हो। पर दूसरी ओर भारतवर्ष में धार्मिक प्रवृत्ति को साधक की बन्द आँखों के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है, मानो वह अपने भीतर देख रहा है।

आजकल हम लोग जिस हिन्दू नाम से परिचित हैं, इस समय उसकी कोई सार्थकता नहीं है, क्योंकि उस शब्द का अर्थ केवल यह था – सिन्धु नदी के पार बसनेवाले। प्राचीन फारसियों के गलत उच्चारण से सिन्धु शब्द 'हिन्दू' हो गया। सिन्धु नदी के इस पार के सभी लोगों को वे हिन्दू कहते थे। इस प्रकार हमें हिन्दू शब्द मिला। फिर मुसलमानों के शासनकाल से हमने स्वयं भी यह शब्द अपने लिए स्वीकार कर लिया।

तुम हिन्दू हो, अत: तुम्हारा सहज विश्वास है कि तुम चिर काल तक रहोगे। मेरा विश्वास है कि कोई हिन्दू नास्तिक नहीं हो सकता। सम्भव है कि कोई पाश्चात्य ग्रन्थ पढ़कर अपने को भौतिकवादी मानने लगा हो। पर ऐसा कुछ काल के लिए ही होता है। यह बात तुम्हारे खून में नही है। जो बात तुम्हारे रग रग में है, उसे तुम निकाल नहीं सकते। ❖ (क्रमश:) ❖
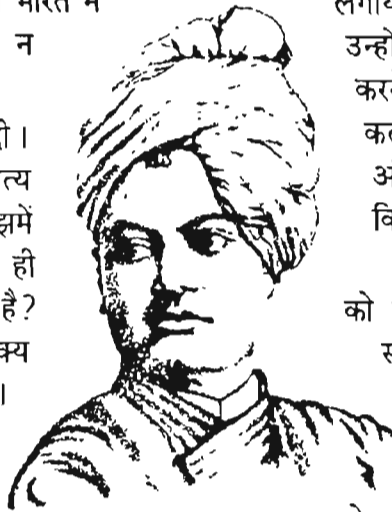
निष्काम कर्म की महत्ता

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी ने आकाशवाणी के चिन्तन कार्यक्रम के लिए विविध विषयों पर अनेक विचारोत्तेजक लेख लिखे थे, जो उसके विभिन्न केन्द्रों द्वारा समय समय पर प्रसारित किये जाते रहे हैं तथा काफी लोकप्रिय हुए हैं। प्रस्तुत लेख आकाशवाणी, जगदलपुर से साभार गृहीत हुआ है। - स.)

गीता में निष्काम कर्म की बड़ी महिमा बताई गई है। निष्काम कर्म का महत्त्व केवल हमारे आध्यात्मिक जीवन की दृष्टि से ही नहीं है, प्रत्युत हमारे भौतिक जीवन में भी इसकी महत्ता निर्विवाद है। भौतिक जीवन में निष्कामता हमारे कर्मो को पूर्णता प्रदान करती है और उन्हें अधिक-से-अधिक फलप्रसू बनाती है। इसका आध्यात्मिक पक्ष कर्म में निहित स्वाभाविक विष से हमारी रक्षा करता है और हमें असफलता के समय टूटने से बचाता है। इसके साथ ही वह सफलता के उन्माद का मोचन भी करता है। ये दोनों पक्ष एक दूसरे के पूरक हैं। इन दोनों पक्षों को मिलाकर ही निष्काम कर्म के सिद्धान्त का सम्पूर्ण अर्थ प्राप्त होता है। निष्काम कर्म का भौतिक पक्ष यह कहता है कि कर्म के फल की अतिरिक्त चाह मत रखो। कर्मफल की चाह तो स्वाभाविक है। जब मनुष्य कोई कर्म करता है, तो उसके फल की कामना से प्रेरित होकर ही करता है। पर गीता कहती है कि चाह की तीव्रता इतनी न कर लो कि जिससे कर्म करने की शक्ति पर बाधा पड़े। उदाहरणार्थ, एक विद्यार्थी परीक्षा की तैयारी करता है। ज्योंही पुस्तक खोलकर वह पढ़ने बैठता है, उसकी आँखों के सामने परीक्षाफल नाचने लगता है। सोचता है, यदि अमुक श्रेणी में उत्तीर्ण होऊँगा, तो विदेश पढ़ने के लिए जाऊँगा। वह कल्पना के महल खड़ा करता है और इस व्यर्थ की फलचिन्ता में उसका अधिकाश समय नष्ट हो जाता है। यह समय अगर वह पढ़ाई में लगा देता, तो उसका कर्म अधिक सक्षम और पूर्ण बनता और उस कर्म का फल भी उसके लिए अधिक वांछित होता।

यही बात प्रत्येक क्षेत्र में लागू होती है। हम कर्म करने में अधिक ध्यान न देकर उससे प्राप्त होने वाले फल के चिन्तन में व्यर्थ समय गँवाया करते हैं। अतः निष्काम कर्मरूपी सिद्धान्त का भौतिक पक्ष कहता है कि पूरी शक्ति के साथ कर्म करते चलो। उसका उचित फल तो कर्म के न्याय के अनुसार अनिवार्य रूप से प्राप्त होगा ही। व्यर्थ के फल-चिन्तन में समय न गँवाओ। फल के बारे में सोचते रहने से मन भटक जाता है, हम अपना पूरा मन कार्य में नहीं लगा पाते। इसलिये वह फल की चाह करने से हमें रोकता है।

निष्काम कर्म का आध्यात्मिक पक्ष यह कहता है कि ईश्वर-समर्पित बुद्धि से जीवन के सब कार्य करो, अर्थात् कर्म तो करो और पूरी शक्ति के साथ करो, पर उसका फल ईश्वर पर छोड़ दो। यह दृष्टिकोण हमारी रक्षा करता है। मान लीजिए किसी ने पूरे मन-प्राण के साथ एक कर्म किया और अन्त में इतने प्रयत्न के बावजूद उसे असफलता हाथ लगी। जो व्यक्ति निष्काम कर्म का विश्वासी नहीं है, उसकी क्या दशा होगी? वह टूट जाएगा, बिखर जायेगा। वह समाज को दोष देगा। वह हताश हो जायेगा और सम्भव है, जीवन से निराश हो जाये। भौतिकवादी लोगों के जीवन में हम असफलता एव निराशा प्रायः देखा करते हैं। एक बार असफल होने पर वे पुनः खड़े होने में समर्थ नहीं हो पाते। अब उनको देखें, जो निष्काम कर्म के सिद्धान्त पर विश्वास करते हैं और अपने कर्मो के फल ईश्वर की इच्छा पर छोड़ देते हैं। यदि ऐसा व्यक्ति असफल होता है, तो वह सोचता है कि ईश्वरेच्छा से ऐसा हुआ। वह सन्तोष कर लेता है कि इस असफलता से ईश्वर उसका मगल ही करेंगे। और इस प्रकार, अपने आप को टूटने से बचाकर, वह ईश्वर पर अधिक विश्वास के साथ, दुगने उत्साह से अपने कार्य में लग जाता है। जब उसे सफलता मिलती है, तो उसे भी वह ईश्वर की कृपा समझता है और अपने आपको एक निमित्त मात्र मानता है। दोनों ही स्थितियों में कर्म का लेप उस पर नहीं लग पाता। उसका समर्पण-भाव कर्म के विष से उसकी रक्षा करता है।

यहाँ कुछ लोग यह आपत्ति उठा सकते हैं कि यह तो पलायनवाद हुआ। ईश्वर को फल समर्पित करना तो मात्र एक कल्पना है। इसका उत्तर यह है कि आखिर जीवन भी तो एक कल्पना है। यदि कोई कल्पना हमें टूटने से बचाती है तो उसका सहारा हम क्यों न लें। अक्षाश और देशान्तर की रेखाएँ कोई प्राकृतिक रेखाएँ नहीं हैं, फिर भी उनके सहारे हम हवाई जहाज और पानी के जहाज से यात्रा करके गन्तव्य पर पहुँच जाते हैं। फिर, ईश्वर तो कल्पना की उपज है नहीं, वह जीवन का शाश्वत सत्य है, अखिल शक्ति का स्रोत है। निष्काम कर्म जहाँ हमारे भौतिक जीवन को समृद्ध करता है, वहाँ हमें आध्यात्मिक रूप से भी उन्नत बनाता है। ❑❑❑

अंगद-चरित (४/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(हमारे आश्रम द्वारा आयोजित विवेकानन्द-जयन्ती समारोह के अवसरों पर पण्डितजी ने 'अंगद-चरित' पर कुल १० प्रवचन दिये थे। प्रस्तुत लेख उसके चौथे प्रवचन का पूर्वार्ध है। टेप से इसे लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्री राजेन्द्र तिवारी ने किया है, जो श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर में प्राध्यापक है। – सं.)

अंगद बालि के द्वारा श्रीराम के करकमलों में अर्पित कर दिये जाते हैं। इसके बाद भगवान श्रीराम सुग्रीव को किष्किंधा का राजपद और अंगद को युवराज पद देते हैं। इसके साथ ही वे सुग्रीव से यह भी कह देते हैं – मित्र, तुम अंगद के साथ एक मत होकर किष्किंधा का राज्य चलाओ और यह बात सदैव स्मरण रखना कि तुम्हे श्री सीताजी का पता लगाना है।

भगवान की इस बात को सुग्रीव ने सही अर्थों में नहीं लिया। उन्होंने राज्य की व्यवस्था तो अंगद के हाथों में सौंप दी और यह सोचकर निश्चिन्त हो गये कि यही भगवान राम का आदेश था और वह मैंने पूरा कर दिया। स्वयं क्या करने लगे? बहुत काल भोगो से वंचित रहे थे, जैसे ही भोग मिले, उन्ही में डूब गये। बड़ा विचित्र बँटवारा कर लिया – अपने लिये भोग और अंगद के लिये राज-काज। आयु की दृष्टि से अंगद युवक है, सुग्रीव की अवस्था उनसे बड़ी है। अत: यह विभाजन उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। लेकिन उन्होंने इसी प्रकार का विभाजन किया। स्वयं भोगों में डूब गये। उन्होंने भगवान के दूसरे वाक्य का जो अर्थ लगाया, उसमें भी स्वयं को धोखा देने की चेष्टा की। भगवान श्रीराम ने उनसे यह कहा था कि तुम्हें श्री सीताजी का पता लगाना है। और इतना ही नहीं उन्होंने एक महत्वपूर्ण शब्द जोड़ दिया –

संतत हृदयँ धरेहू मम काजू ।। ४/१२/९

संतत शब्द का अभिप्राय यह था कि तुम क्षण भर के लिये भी इस बात को मत भूलना कि श्री सीताजी को पता लगाना है, यह परम आवश्यक कार्य है। यह जो सूत्र श्रीराम ने सुग्रीव को दिया, वह सूत्र तो संसार में हर व्यक्ति के लिये है, क्योंकि हमारे आपके जीवन में इस प्रकार के प्रश्न आते हैं, इस प्रकार की समस्याएँ आती हैं। वह यह है कि एक ओर तो सांसारिक कार्य हैं, व्यावहारिक स्वार्थ के कार्य हैं और दूसरी ओर सत्संग में भक्ति और ज्ञान की महिमा और ईश्वर या भक्ति की प्राप्ति को जीवन का लक्ष्य बनाया जाता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति कभी कभी स्वयं को बड़ी उलझन में पाता है कि कैसे इन दोनों का क्रम से निर्वाह किया जाय। या तो इसका एक अर्थ यह लिया जा सकता है कि पहले हम व्यावहारिक जीवन की समस्या को सुलझा लें और उसके बाद परमार्थ की प्राप्ति की चेष्टा करें। या दूसरा सूत्र यह है – नहीं, व्यावहारिक समस्या में उलझने के बाद तो व्यक्ति परमार्थ की दिशा से विरत हो जाता है, अत: व्यवहार की उपेक्षा करके हमें जीवन के चरम लक्ष्य को पाने की चेष्टा करनी चाहिये। 'मानस' में इसका जो उत्तर दिया गया, वह उत्तर एक ही रूप में नहीं दिया गया। भिन्न भिन्न प्रसंगों में इस प्रश्न के भिन्न भिन्न उत्तर दिये गये हैं। तात्पर्य यह कि अलग अलग प्रकार के व्यक्ति के लिये उत्तर भी अलग अलग है। साधारण दृष्टि से देखने पर तो सभी एक जैसे दिखाई देते हैं, परन्तु मन और अन्त:करण के संस्कार और उसकी बनावट पर दृष्टि डालें तो देखेंगे कि उसमें भिन्नता है। ऐसी स्थिति में इसका गणित के समान कोई निश्चित नियम नहीं है कि जिसमें यह कहा जा सके कि हर व्यक्ति के जीवन में इसी क्रम को स्वीकार करना चाहिये। अपितु इसका उत्तर यही है कि वस्तुत: अधिकारी भेद से व्यक्ति के अन्त:करण का जैसा निर्माण हुआ है, उसी के अनुरूप साधना-पद्धति स्वीकार करनी चाहिये। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं कि व्यावहारिक जीवन के प्रति उन्हें कोई आकर्षण नहीं होता अर्थात् ऐसे व्यक्ति के जीवन मे पूर्व पूर्व जन्मों से वैराग्य या उपरामता का उदय हो गया है। 'मानस' में इस ओर संकेत किया गया है –

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना ।
ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना ।। ३/१६/१

ऐसे भी व्यक्ति होते हैं, जो व्यावहारिक जीवन से ऊपर उठ जाते हैं और उनमें वैराग्य व उपरामता की वृत्ति आ जाती है। जिनके जीवन में यह वैराग्य व उपरामता की वृत्ति आ गई है, उनके लिये यह जरूरी नहीं कि जीवन में व्यवहार को स्वीकार करें, पर ऐसे व्यक्ति बहुत विरले होते हैं। अधिकांश लोग ऐसे होते हैं, जिनके संस्कार सांसारिक होते हैं।

यहाँ पर यदि तुलना के रूप में देखें तो स्पष्ट रूप से तीन पात्र सामने आते हैं – श्री हनुमानजी, सुग्रीव और अंगद। अब इन तीनों में यदि हम हनुमानजी के चरित्र पर दृष्टि डालें तो उनके जीवन में पारिवारिक व्यवहार का कोई चित्र सामने नहीं आता। हनुमानजी बाल-ब्रह्मचारी हैं और सर्वतोभावेन श्रीराम की सेवा में समर्पित हैं। उन्होंने विवाह करके गार्हस्थ्य जीवन स्वीकार नही किया और उनके समक्ष किसी ऐसी परिस्थिति का प्रश्न भी नहीं है। उनके जीवन का तो एकमात्र लक्ष्य भगवान की सर्वतोभावेन सेवा है। दूसरी ओर सुग्रीव जैसे लोग भी हैं,

जिनके जीवन में उपरामता नहीं, बल्कि विषयासक्ति है। ऐसी स्थिति में 'मानस' में यह जो समन्वय की पद्धति है, उसका सर्वश्रेष्ठ परिचय हनुमानजी और सुग्रीव के सम्बन्ध में मिलता है। साधारणतया जो व्यक्ति विषयी होता है, उसकी मित्रता भी विषयी लोगों से ही होती है और उसी प्रकार जो व्यक्ति विषयों से उपराम अर्थात् वैराग्यवान हैं, उनकी संगति भी वैराग्यवानों से होती है, पर हनुमानजी और सुग्रीव के चरित्र में एक बड़ी विचित्रता है कि सुग्रीव के चरित्र में वैराग्य व उपरामता तो नहीं है, पर उनके विश्वास-पात्र हनुमानजी जैसे वैराग्यवान हैं। यह सुग्रीव के चरित्र का एक विचित्र पक्ष है कि विषयी होते हुए भी उनकी श्रद्धा और विश्वास की वृत्ति वैराग्यवान के प्रति है और यही भविष्य में सुग्रीव के कल्याण का कारण बनती है।

दूसरी ओर हैं हनुमानजी। स्वयं परम वैराग्यवान होकर भी सुग्रीव जैसे व्यक्ति को सम्मान या महत्त्व देने में उनको रंचमात्र भी हिचकिचाहट नहीं होती। वे सुग्रीव के पास रहकर निरन्तर प्रसन्न दिखायी देते हैं। यह जो हनुमान और सुग्रीव की वृत्ति है, इस दृष्टि से भी बड़ी हितकर है कि भले ही हमारे जीवन में दुर्बलताएँ हों, पर इसके बाद भी यदि हम ऐसे लोगों के पास रहेंगे या उनसे मित्रता जोड़ेंगे, जिनमें वही दुर्बलताएँ विद्यमान हैं, तो इसके स्वाभाविक परिणाम-स्वरूप उस दुर्बलता को और भी अधिक बढ़ावा मिलेगा। ऐसे व्यक्तियों के सम्पर्क में हमारी दुर्बलताएँ और भी बढ़ेंगी। परन्तु स्वयं में दुर्बलता होते हुए भी जब हमारी श्रद्धा व आदर का केन्द्र कोई वैराग्यवान महापुरुष होता है, तो मन से भले ही वह व्यक्ति रोगी हो, पर बुद्धि से उसके मन में वैराग्य के प्रति श्रद्धा है।

इसके बाद सुग्रीव के जीवन में संकेत आता है, हनुमानजी के द्वारा सुग्रीव धीरे धीरे भगवान की दिशा में मोड़े जाते हैं। हनुमानजी के जीवन का यह उदारता का पक्ष है और यह बड़ा घ्यावहारिक भी है। इसका अर्थ है कि जैसे आपके परिवार में आपके कई पुत्र हों, कई सदस्य हों, तो क्या आप परिवार के हर सदस्य से एक ही प्रकार की आशा रखते हैं? एक नन्हा बालक है, जो दो-चार साल का है और एक युवक है, दोनों पुत्र हैं। ऐसी स्थिति में हम एक युवक पुत्र से जो आशा रखते हैं, वह एक नन्हें बालक से नहीं रख सकते। हम यह मानकर चलते हैं कि युवक का कर्तव्य यही है, पर नन्हें बालक को तो कुछ-न-कुछ छूट देनी ही पड़ेगी। ऐसी स्थिति में श्री हनुमानजी के चरित्र में उदारता का पक्ष यही है कि वे स्वयं सुग्रीव की कमियों से परिचित होते हुए भी यह जानते हैं कि सुग्रीव जैसे दुर्बल व्यक्ति को आश्रय की जरूरत है, तिरस्कार की नहीं। यदि उनको घृणा की दृष्टि से देखकर दूर भगा दिया जाय, तब तो ऐसे व्यक्ति के कल्याण का कोई मार्ग रह ही नहीं जाएगा।

ये जो तीन पात्र आते हैं, आगे चलकर किष्किंधा-काण्ड में इनकी भूमिका भिन्न भिन्न रूपों में प्रकट होती है। हनुमानजी सुग्रीव को भगवान से मिलाते हैं। वहाँ हम एक बात और देखते हैं कि भगवान जब सुग्रीव से वार्तालाप करते हैं और हनुमानजी जो बातें करते हैं, तो इन दोनों में बड़ी भिन्नता है। जब हनुमानजी से प्रभु का मिलन हुआ, तब भगवान उन्हें अनन्य भक्ति के स्वरूप का उपदेश देते हैं। हनुमानजी कहते हैं – प्रभु, मुझे तो पता नहीं कि भक्ति क्या है। प्रभु कहते हैं – "भक्ति तो अनन्य होनी चाहिये और हनुमान! जो समस्त ब्रह्माण्ड को मेरा ही रूप मानकर और अपने को सेवक मानकर सबकी सेवा करता है, वही अनन्य भक्ति है और मुझे विश्वास है कि तुम्हारे जीवन में वही अनन्य भक्ति विद्यमान है –

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।। ४/३

प्रभु जब हनुमानजी से बातें करते हैं, तब स्तर यह है, पर जब वे सुग्रीव से मिलते हैं, तब उन्हें भक्ति का उपदेश नहीं देते, ज्ञान-विज्ञान की भी बाते नही करते, वे ऐसी कोई भी आध्यात्मिक या पारमार्थिक बात नही करते, जो सामान्य धरातल से ऊपर की हो। बल्कि प्रभु सुग्रीव से जो बातें कहते हैं, वे हनुमानजी को कही बातों की तुलना में बड़ी हल्की-सी लगती हैं। मानो बड़ी व्यावहारिक बाते बताते हुए वे कहते हैं – "सुग्रीव आज से हम तुम मित्र हो गये। मैं तुम्हे यह बताता हूँ कि मित्र का धर्म और कर्तव्य क्या है।" उन्होंने श्रीगणेश कहाँ से किया? प्रभु ने यही से प्रारम्भ किया – सुग्रीव, मित्र को चाहिये कि न तो देने में संकोच करे और न लेने में –

देत लेत मन संक न धरई।
बल अनुमान सदा हित करई।।
बिपति काल कर सतगुन नेहा।
श्रुति कह संत मित्र गुन एहा।। ४/७/५-६

हनुमानजी से वे लेन-देन की बात नही करते, पर सुग्रीव से लेन-देन की बात में भी संकोच नही करते। इसका क्या तात्पर्य है? हनुमानजी तो लेनेवाले है नही; बस, देनेवाले है, पर सुग्रीव से भी यह कह दिया जाय कि देना ही भक्ति है, तब तो सुग्रीव भक्ति से बहुत दूर हो जाते।

यह भी प्रभु का बड़ा कौतुक है कि वे जिससे मिलते हैं, उससे उसी की भाषा में, वैसे ही बनकर बातें करने लगते हैं। हनुमानजी से प्रभु ने नाता जोड़ लिया। प्रभु ने उनसे कहा – "भाई, हम दोनों का नाता तो शाश्वत है। तुमने स्वीकार किया ही है कि मै ब्रह्म हूँ और संसार जानता है कि तुम ब्रह्मचारी हो, तो ब्रह्म और ब्रह्मचारी का सम्बन्ध तो शाश्वत है।" ब्रह्मचारी शब्द का अर्थ यही है कि जो निरन्तर ब्रह्म मे ही रमण कर रहा है, जो ब्रह्म में ही गतिशील है, जो ब्रह्म मे ही तदाकार है। भगवान राघवेन्द्र जब हनुमानजी से नाता जोड़ते है, तो ब्रह्म और ब्रह्मचारी का नाता जोड़ते हैं, पर सुग्रीव तो ब्रह्मचारी नहीं है, उनसे प्रभु ब्रह्म-तत्त्व की बात नही कहते। उनसे भगवान

बिल्कुल व्यावहारिक बातें कहते हैं। यदि सुग्रीव कह दें – महाराज, हम तो आपसे केवल ले ही सकते हैं, दे क्या सकते है? तो प्रभु कहेंगे – "नहीं, नही, ऐसी कोई बात नही है। वस्तुत: मैं और तुम बिल्कुल एक जैसे हैं। हमारी और तुम्हारी मित्रता बड़ी सार्थक है। देखो, मेरा भी राज्य छिन गया है और तुम्हारा भी। तुम्हारी भी पत्नी का अपहरण हुआ है और मेरी पत्नी का भी। हम दोनों बिल्कुल एक जैसे है। आओ, तुम हमारी सहायता करो, हम तुम्हारी सहायता करेंगे।" जैसे आप किसी छोटे बालक को पढ़ाते हैं। आप बालक को वह नहीं पढ़ाते जिसका आपको ज्ञान है। बालक को उतना ही बताते है, जितना उसमे ग्रहण करने की पात्रता है। आप बालक को अँगुली पकड़कर चलना सिखाते हैं।

न तो भगवान श्रीराम की राज्य जाने की कोई समस्या थी और न ही तात्त्विक दृष्टि से सीताजी से उनका वियोग ही हुआ है। परन्तु यदि इसे उस दृष्टि से न देखकर रंगमंच की दृष्टि से देखे तो वियोग हुआ है, पर राघवेन्द्र तो सर्वशक्तिमान ईश्वर है, सीताजी को पाने के लिये उन्हें सुग्रीव के सहयोग की कोई आवश्यकता नहीं है, पर भगवान यह कहते है – मित्र, हम दोनो एक-दूसरे की सहायता कर सकते है। जीव भी ईश्वर की सहायता कर सकता है और ईश्वर भी जीव की, इसकी भूमिका ईश्वर ने प्रस्तुत की। इसका अर्थ यह हुआ कि वस्तुत: सुग्रीव जिस कक्षा में हैं, भगवान उनसे उसी स्तर की बात करते हैं। इसीलिए प्रभु उनसे पहला प्रश्न यही करते हैं – सुग्रीव यह बताओ कि तुम वन में क्यों रहते हो? –

कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव। ४/५

जब सुग्रीव ने अपनी कथा सुनाई, तो प्रभु की भुजाएँ फड़क उठी और वे सुग्रीव को आश्वासन देते हैं, सुग्रीव तुम निश्चिन्त हो जाओ, मै एक ही बाण से बालि का वध करूँगा –

सुनि सेवक दुख दीनदयाला।
फरकि उठीं द्वै भुजा बिसाला।। ४/६/१४
सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहि बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान।। ४/६

सुग्रीव छलाँग लगाने योग्य भले ही नही थे, पर भगवान की बात सुनकर ऊँची छलाँग लगाने की वृत्ति उनमे आ गई और वे ऊँची छलॉग लगाने के लिये प्रस्तुत हो गये। ज्योंही प्रभु ने कहा कि मै एक ही वाण से बालि को मार दूँगा, तो सुग्रीव ने ऊँची छलाँग, कम-से-कम वाणी के द्वारा छलॉग तो लगा ही दी। वाणी की छलॉग लगाने में तो कोई कठिनाई है नही, कठिनाई तो जीवन में छलॉग लगाने में है। वाणी से तो व्यक्ति नीचे बैठकर ऊँची-से-ऊँची बात कर सकता है। ऐसी तो कोई बाध्यता नहीं है कि नीचे बैठनेवाला व्यक्ति ऊँची बात न करे। सुग्रीव ने भी वाणी की छलाँग लगा दी है। गोस्वामीजी ने उस समय सुग्रीव का परिचय बन्दर कहकर दिया। बोले – बन्दर तो एक डाल से दूसरे डाल पर छलाँग लगाता ही रहता है। अब इस समय सुग्रीव की वही छलाँग-वाली वृत्ति सामने आई। भगवान राम ने कहा – मैं बालि का वध करूँगा, तुम्हे राज्य दूँगा, तुम्हारी पत्नी से तुम्हे मिला दूँगा। यह सब वे सुग्रीव को बिल्कुल साधारण पद्धति से कहते हैं। पर सुग्रीव ने तुरन्त वाणी की छलॉग लगाने की चेष्टा करते हुए प्रभु से कहा – महाराज, राज्य दिला देना या पत्नी से मिला देना या शत्रु को मार देना, इसमें आपकी कोई बहुत बड़ी कृपा थोड़े ही है; यह तो साधारण कृपा है। हनुमानजी के साथ रहते रहते सुग्रीव ने कभी-न-कभी तो यह सुना होगा कि भगवान की सर्वोच्च कृपा क्या है। कृपा के भी भिन्न भिन्न व्यक्तियो के मन में भिन्न भिन्न अर्थ होते है। सुग्रीव ने कहा – प्रभो, ऐसी कृपा मत कीजिये। – तो कैसी कृपा करें? सुग्रीव ने कहा – उस तरह से कृपा कीजिये, जैसा मैं कह रहा हूँ –

अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। ४/७/२१

प्रभु को हँसी आ गई – कृपा मुझे करनी है और किस तरह से करनी है, वह आप बतायेंगे। वास्तव में कृपा किस प्रकार से करनी है, यह तो कृपा करनेवाले पर निर्भर करती है। जिस पर कृपा की जाती है, उसके कहे अनुसार थोड़े ही होता है। पर हॉ, यदि आप दुकान से कुछ खरीदने जायँ, तो दुकानदार से कह सकते हैं – भई, हमें यह नहीं, यह वस्तु चाहिये। पर कृपा तो कृपा है, वहॉ चुनाव के लिये कोई अवसर नहीं है। जो मिल रहा है, उसे ग्रहण कीजिये।

वस्तुत: सुग्रीव को कृपा किसी साधना के द्वारा नहीं मिल रही थी, वे तो कृपा के ही द्वारा कृपा पा रहे थे। पर वे कहते है – महाराज, आप ऐसी कृपा कीजिये जैसा मै कह रहा हूँ – मैं चाहता हूँ कि सब कुछ छोड़ आपका भजन करूँ –

सब तजि भजनु करौं दिन राती।। ४/७/२१

यह सुनकर प्रभु खूब हँसे – बन्दर की ऐसी ऊँची छलाँग! भगवान सोचने लगे – "यह तो उल्टा हो गया। मैं तो ऊपर से नीचे उतर आया और यह ऊपर से नीचे चढ़ गया। अब हम दोनो की मित्रता कैसे होगी? मित्रता तो तभी होती है, जब दोनों बराबरी के स्तर पर बैठें। मैं तो बिल्कुल सांसारिकता की बात कर रहा हूँ कि तुम्हारे शत्रु को मिटा दूँगा, राज्य दिला दूँगा, पत्नी से मिला दूँगा और यह इतनी ऊँची बात कर रहा हैं कि सब कुछ छोडकर भजन करूँगा। यहॉ हम इस प्रसंग के विस्तार मे नही जायेंगे। पर अन्त में प्रभु बोले – तुमने जो बात कही, उसकी सच्चाई में जरा भी सन्देह नही है –

जो कछु कहेहु सत्य सब सोई।। ४/७/२३

पर भगवान के 'कहेउ' शब्द में व्यंग्य था। सुग्रीव कह तो गये इतनी ऊँची बात, पर इसकी व्यावहारिकता का तो भविष्य में ही पता चलेगा। – क्या पता चलेगा? – यह कि जहाँ सब कुछ छोड़कर भजन करना चाहते थे, वहीं सब कुछ में ऐसे

डूबे कि भजन को और भगवान को ही भूल गये। भगवान ने सुग्रीव को सब कुछ दे दिया और कहा – "मित्र, तुम बिना कुछ लिये ही मेरी सेवा करना चाहते थे, पर अब तो तुमने पा लिया है, अब तो अपना कार्य नहीं भूल जाओगे।" इसका सांकेतिक अर्थ मानो यह है कि निष्कामता और वैराग्य निश्चित रूप से सकामता से श्रेष्ठ हैं, लेकिन सुग्रीव को अभी उसमें अधिकार नहीं है। अभी उसे क्रमशः आगे बढ़ना है।

हनुमानजी से भगवान श्रीराम ने कभी किसी व्यावहारिक कार्य के लिए अपेक्षा नहीं रखी। रामराज्य के बाद भगवान ने अयोध्या से सारे बन्दरों को तो विदा किया, पर हनुमानजी को नहीं किया। इसका एक व्यावहारिक पक्ष यह भी है और वह यह कि भगवान श्रीराघवेन्द्र यह मानकर चलते हैं कि अन्य बन्दरों के लिये पारिवारिक जीवन आवश्यक है, पर हनुमानजी व्यावहारिक भूमिकाओं से ऊपर उठ चुके हैं। उनके जीवन में व्यवहार की अपेक्षा नहीं है। इसीलिए भगवान राम ने किसी एक वाक्य के द्वारा भी हनुमान को वहाँ से विदा करने का प्रयास नहीं किया। इसमें भी वही अधिकार-भेद की बात है।

भगवान श्रीराघवेन्द्र ने सुग्रीव को समझा दिया कि यदि कोई व्यक्ति दूसरे को छलाँग लगाते देखकर स्वयं भी उछलने की चेष्टा करेगा, तो वह बुरी तरह से गिरेगा, उसके हाथ-पाँव टूटेंगे। यही दशा सुग्रीव की हुई भी। भगवान ने कहा – देख लो, नकली छलाँग का क्या परिणाम होता है। उन्हें बालि से लड़ने भेज दिया और बालि ने जब सुग्रीव पर प्रहार किया तो भगवान चुपचाप देखते रहे, कुछ नहीं बोले। सुग्रीव वहाँ से भागे और आकर भगवान को उलाहना दी – "आपने तो कहा था – मैं बालि को मारूँगा।" प्रभु को हँसी आ गई। प्रभु कुछ .कह सकते थे – जब शत्रु-मित्र कुछ नहीं है, तो बालि को मारने की बात ही कहाँ रह गई? परन्तु भगवान मानो बता देना चाहते हैं – नहीं मित्र, अभी तुम उसके पात्र नहीं हो।

सुग्रीव का जीवन क्रम-विकास का जीवन है। वह क्रम इस प्रकार है – पहले वे संसार में थे। फिर संसार के साथ साथ उनकी भगवान से मित्रता हुई। भगवान ने उनकी कामनाओं को पूरा किया। उसके बाद जैसे विद्यार्थी को क्रमशः ऊँची कक्षाओं में ले जाने की चेष्टा की जाती है, वैसे ही वे उन्हें आगे बढ़ाने की चेष्टा करते हैं। यहाँ भगवान सुग्रीव को यही सूत्र देते हैं। कहते हैं – तुम जीवन में दोनों को साथ लेकर चलने की चेष्टा करो, व्यवहार का भी निर्वाह करो और भक्ति के लिए भी प्रयास करो। भगवान ने बड़ा सुन्दर सूत्र दे दिया।

अब यह व्यवहार कोई सतत स्मृति की वस्तु नहीं है, न तो यह सृष्टि सतत है और न व्यवहार का सम्बन्ध ही सतत हो सकता है, परन्तु भगवान और भक्ति से तो सतत सम्बन्ध की अपेक्षा है। दूसरी बात भगवान ने यह कही कि तुम अंगद को साथ लेकर राज-काज चलाओ पर राज-काज चलाते हुए भी तुम हृदय में सदा यही ध्यान रखना कि श्री सीताजी का पता लगाना है। बाहर से व्यवहार और भीतर से भगवान के प्रति भक्ति, दोनों का सामञ्जस्य – यह सूत्र दिया भगवान ने। सुग्रीव को आगे बढ़ाने की चेष्टा की। लेकिन सुग्रीव अपनी भोग-परायण वृत्ति के कारण भोगों को पाते ही उसमें इतने डूब गये और स्वयं को ऐसा भुलावा देने की चेष्टा की, अपने भोगों के पक्ष में ऐसा तर्क खोज लिया कि प्रभु ने श्री सीताजी को पता लगाने के लिये कहा तो है, पर कोई समय थोड़े ही दिया है कि इतने दिनों के भीतर पता लगाना है। यदि प्रभु ने कोई निश्चित अवधि दी होती, यदि कह दिया होता कि इतने दिनों में पता लगाना है, तो दूसरी बात थी, पर ऐसी कोई जल्दी नहीं है। यह सुग्रीव का अपने आप के प्रति एक बहुत बढ़िया धोखा था, जिसका परिणाम सामने आ गया।

हनुमानजी और लक्ष्मणजी जब पहुँचे, तो सुग्रीव डर के मारे काँपने लगे और इसी कारण तो बाद में बड़े सावधान हो गये। जब बन्दरों को कहा कि श्री सीताजी का पता लगाकर आओ तो साथ ही यह भी कह दिया – पन्द्रह दिनों के भीतर। – यह पन्द्रह दिन क्यों दे रहे हैं? बोले – मैं अनुभव से सीख रहा हूँ। प्रभु ने मुझे समय की सीमा नहीं दी, इसीलिये मैं भोग में डूब गया। इसीलिये इन लोगों को अब बता दे रहा हूँ कि यह काम दी हुई समय-सीमा के भीतर ही होना चाहिये।

सुग्रीव विषयों और भोगों को पाकर कुछ समय के लिये विषय-विमूढ़ और भ्रान्त-से हो जाते हैं। और अंगद? अंगद और सुग्रीव में जो भिन्नता है, उसे गोस्वामीजी ने बड़े सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है। भगवान श्रीराम सुग्रीव पर क्रोध करते हैं और अन्त में लक्ष्मणजी को यह कहकर भेजते हैं कि जाकर सुग्रीव को डराओ। अंगद की भूमिका और सुग्रीव की भूमिका में बड़ा विलक्षण अन्तर है। लक्ष्मणजी के जाने पर सुग्रीव तो बाद में मिले, अंगद पहले मिल गये। गोस्वामीजी ने अंगद और सुग्रीव के चरित्र का एक अन्तर यह भी बताया कि लक्ष्मणजी जब नगर में पहुँचे तो धनुष चढ़ाकर कहा – मैं सारे नगर को जलाकर नष्ट कर दूँगा, पूरे किष्किन्धा के लोगो को जलाकर नष्ट कर दूँगा। तब अंगद की भूमिका सामने आई। जब सुग्रीव ने सुना कि लक्ष्मणजी आये हुए हैं, तो वह बेचारा डर के मारे घर में जाकर छुप गया। और अंगद ने क्या किया? उन्होंने तो बिल्कुल उल्टा काम किया – नगर को व्याकुल देखकर बालि के पुत्र अंगद आये –

धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करउँ पुर छार।
ब्याकुल नगर देखि तब आयउ बालिकुमार।। ४/१९

फिर बालि के पुत्र के रूप में अंगद का स्मरण किया गया। आपको यह सूत्र याद होगा। वस्तुतः यह अंगद और सुग्रीव के चरित्र का जो सूत्र है, उसको हम यों कह सकते है कि एक पात्र ऐसा है, जिसे भय की आवश्यकता है और वह भय के

द्वारा ही प्रेरित होता है, दूसरे का चरित्र भय से नहीं, बल्कि विवेक और भक्ति की वृत्ति से प्रेरित होता है, उसे भय की आवश्यकता नहीं होती। यह सूत्र यहाँ पर आप पायेंगे – अंगद उनके चरणों में सिर नवाकर प्रणाम करते हैं और लक्ष्मणजी तत्काल उनकी बाँह पकड़कर कहते हैं – अंगद, तुम्हारे लिये तो कहीं रंचमात्र भी भय का प्रश्न नहीं है –

चरन नाइ सिरु बिनती किन्ही ।
लछिमन अभय बाँह तेहि दीन्हीं ।। ४/२०/१

एक साथ दो बातें, आये तो थे क्रोध में भरे हुए, डराने के लिए, पर पहले अंगद को अभय किया और सुग्रीव को भय दिखाया। भय और अभय का सार्थक प्रयोग। सुग्रीव के चरित्र में दुर्बलताएँ हैं, इसलिए उनके चरित्र में भय है और अंगद का बहुत बड़ा गुण है – उनकी विचारशीलता तथा अभयवृत्ति।

लक्ष्मणजी आये थे सुग्रीव को भय दिखाने, पर केवल भय ही नहीं, अभय भी देते हैं। फिर इसके अन्तराल में एक और भी विलक्षण चरित्र है – हनुमानजी का। हनुमानजी और प्रभु के हृदय के तार तो ऐसे मिले हुए हैं कि क्या कहें ! सच तो यह है कि उनके हृदय में तो प्रभु ही बैठे हुए हैं। बड़े कौतुकी हैं प्रभु। इधर तो लक्ष्मणजी को भेजा कि जाकर सुग्रीव को डराओ और उधर हनुमानजी के हृदय में बैठे ही बता दिया कि लक्ष्मण सुग्रीव को डराने आ रहे हैं और यह काम तुम्हीं कर डालो, लक्ष्मण को न करना पड़े तो अच्छा रहेगा। लक्ष्मणजी को आने में तो समय लगा, पर हनुमानजी तत्काल सुग्रीव के महल में पहुँच गये। सुग्रीव अपनी रानियों के साथ बैठे हुए थे और परम वैराग्यवान तथा ब्रह्मचारी हनुमान को देखकर वे बड़े संकोच में पड़ गये। उन्होंने पूछा – इस समय आपने कैसे कष्ट किया? हनुमानजी ने कहा – आज तो मैं आपको कथा सुनाने आया हूँ। सुग्रीव बोले – हाँ महाराज, आपने बड़ी अच्छी कथा सुनाई थी, जब प्रभु को लेकर आये थे। हनुमानजी ने कहा – पर कथा तो कभी समाप्त होती नहीं, वह अधूरी रह गयी थी; आज उसके आगे की कथा सुन लो। हनुमानजी ने कथा आरम्भ की।

यहाँ एक संकेत सूत्र है – भय और अभय – रामायण में दोनों का ही उपयोग किया गया है। ईश्वर में अनन्त गुण हैं और महाप्रभु वल्लभाचार्य कहते हैं – ईश्वर अखिल विरुद्ध धर्माश्रय हैं। एक ही व्यक्ति में परस्पर विरोधी गुण दिखाई नहीं देते, परन्तु ईश्वर में समस्त विरोधी गुण एक साथ दिखाई देते हैं। प्रश्न उठता है कि ईश्वर भयदायक हैं या अभयदायक? इसका वही उत्तर है। ईश्वर में कृपागुण भी है और न्यायगुण भी। कृपा और न्याय परस्पर एक-दूसरे से भिन्न है। जो न्याय करेगा, वह कृपा नहीं करेगा और जो कृपा करेगा, वह न्याय नहीं कर सकेगा, पर ईश्वर बहुत बड़ा न्यायाधीश है –

करम प्रधान बिस्व करि राखा ।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा ।।२/२१९/४

और ईश्वर परम कृपालु भी हैं। इसका सीधा-सा अर्थ यह है कि जिसके जीवन में कृपागुण की स्मृति होती है, वह अभय हो जाता है और जिसके जीवन में ईश्वर के न्यायगुण की याद आती है, वह डर के मारे काँपने लगता है। ईश्वर की कृपा का स्मरण करें, तो इसके असंख्य दृष्टान्त हैं और इसके पात्रों के असंख्य चरित्र हैं। और ईश्वर की न्यायिकता पर विचार करें, तो कबीर को इसकी याद आने पर वे कहते है –

तुम स्वामी दुखभंजना, मैं तो भरा विकार ।
चाहे बन्दा बकसिये, चाहे गरदन मार ।।

– महाराज, आप मारने और जिलाने वाले दोनों हैं। आप न्याय भी करते हैं। आप ही निर्णय कर लीजिये कि आप मुझे कृपा का पात्र मानते हैं कि दण्ड का।

ये जो ईश्वर के अलग अलग गुण हैं, यह जो भिन्नता है, वह अलग अलग महापुरुषों की प्रेरणा में और वही बात इस प्रसंग में स्वयं ही सामने आती है। विश्व के महापुरुषों का चरित्र पढ़ें तो कुछ महापुरुषों के जीवन में दिव्य अभय का सन्देश दिया गया है कि समाज और व्यक्ति कैसे निर्भय हो जाय। कुछ महापुरुषों को देखें तो उन्होंने व्यक्ति को बार बार ईश्वर का डर दिखाने की चेष्टा की है। बहिरंग दृष्टि से पढ़ने वालों को लगता है कि ये दोनों महापुरुषों के विचार एक-दूसरे के विरोधी हैं, एक ने दूसरे का खण्डन कर दिया। पर सच तो यह है कि समाज में इतने भिन्न भिन्न प्रकार के व्यक्ति होते हैं और अलग अलग काल में अलग अलग गुणों की अपेक्षा होती है। महापुरुष समय के अनुकूल जो प्रेरणा देते हैं, वह समाज की तात्कालिक आवश्यकता के लिये विशेष उपयोगी होती है और वे सभी सिद्धान्त उपयोगी हैं। ❖ (क्रमशः) ❖
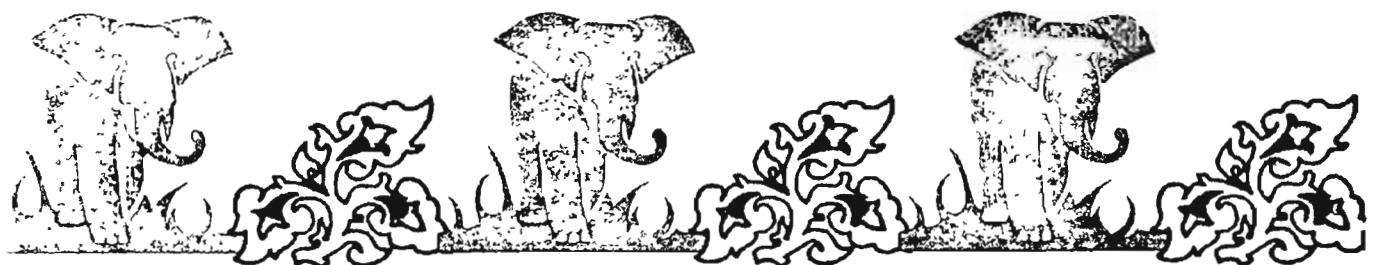
Welcome to Ashramas, Youth groups, Organisations and individuals to join in the movement to reach Swamiji to the masses

ARISE ! AWAKE ! EXHIBITION KITS

on Swami Vivekananda's Life & Message Available Again

Last Date To Receive Orders 20.9.2002

Now Mounted on Un-breakable Plastic Flute Boards & Framed

Bare Production Cost Per Kit	Special Subsidised Price Per Kit
Rs 2200 / -	**Rs 1500 / -**
(For Permenant Display i n institutions)	(For Those Who Conduct 10 Exhibitions)

Send Your Order with full amount by ***A/C Payee Bank Draft*** on **Sri Ramakrishna Ashrama, Mysore**
(Orders without payment are not entertained)

Write-up of the panels will be in English and also one language from the list below.

❖Assamese ❖Bengali ❖Gujrati ❖ Hindi ❖Kannada
❖Malayalam ❖Marathi ❖Oriya ❖Tamil ❖Telugu

Select Language and write in your order

Kits are expected to be despatched by November 2002

SPECIFICATIONS :

- Number of Panels in a set 40 • Printed on 260 GSM Card Sheet • Size 48 × 73 cm
- Thickness of Flute Board 3mm • P.V.C Channel Boarder • Re-Usable Card Board Box Packing
- Total Weight 14 Kg • Bi-lingual With English as Common Language
- Above Cost includes Transport by Post Parcel

Please Write Your Full Postal Address with PIN Number and contact Phone number to:

The President, Sri Ramakrishna Ashrama, Yadavagiri , Mysore 570020
Phones: (0821) 510535, 412424, Fax: (0821) 412800
e-mail: vivekaprabha@eth.net

DONATE LIBERALLY FOR THIS NOBLE CAUSE

SPONSORSHIP DONATION FOR ONE PANEL Rs 25,000 /-

(Sponsor's name or their Company / near-dear ones' name will be printed at the bottom of the panel)

Donations however small will be thankfully accepted

Donations exempt from Income Tax under 80G of the Oct

(Please dont't wait for the next chance - This is the last chance)

जीने की कला (१३)

स्वामी जगदात्मानन्द

(लेखक रामकृष्ण संघ के एक वरिष्ठ संन्यासी है । उन्होने युवको के लिए जीवन-निर्माण में मार्गदर्शन करने हेतु कन्नड़ भाषा मे एक पुस्तक लिखी. जो अतीव लोकप्रिय हुई । इसका अंग्रेजी अनुवाद भी दो भागो मे निकला है । इसकी उपयोगिता को देखकर हम इसका धारावाहिक प्रकाशन कर रहे है । अनुवादक है श्री रामकुमार गौड़, जो सम्प्रति आकाशवाणी के वाराणसी केन्द्र मे सेवारत है । – सं.)

अन्धविश्वास?

विज्ञान के अधकचरे ज्ञान को प्राप्त करके, यथार्थ वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने दावा करनेवाले और किन्ही विशेष राजनीतिक सिद्धान्तो मे ही निष्ठा रखनेवाले नेतागण ईश्वर विषयक श्रद्धा, विशेषकर धर्म, आत्मा आदि को अन्धविश्वास या पाखण्ड कह सकते हैं । आज धर्म के नाम पर कुछ अनाचारो के बारे मे ऐसी आलोचनाओ को मान भी लिया जाय, तो क्या उनकी सारी आलोचनाओ को वैध ठहराया जा सकता है? यह बात दिन की भाँति स्पष्ट है कि धर्म रूपी पवित्र वृक्ष के महान् फलो के रूप में श्रेष्ठ चरित्र के व्यक्ति उत्पन्न हुए है । यदि कोई ऐसे श्रेष्ठ लोगो के चरित्र तथा उनकी सुदृढ़ नैतिकता की प्रेरणा के मूल का गहन अध्ययन किये बिना ही उनके दृष्टिकोण को अन्धविश्वास करार देता है, तो उसका अपना कथन ही उसकी मानसिक संकीर्णता तथा एक तरह के अन्धविश्वास का ठोस प्रमाण है। फिर यह तर्क भी निराधार है कि विज्ञान धर्म या धार्मिक विश्वासों के विरुद्ध ही चलता रहा है । यह सच है कि कुछ वैज्ञानिक आविष्कारो ने कुछ अन्धविश्वासों को मिटा दिया हैं । परन्तु विश्व के महान् धर्मो द्वारा प्रचारित सिद्धान्त और सामाजिक प्राणी मानव द्वारा पालन किये जानेवाले नैतिक मूल्य विज्ञान द्वारा किये जा रहे सत्य की जॉच-पड़ताल की सीमा के बाहर है। सत्य के प्रति प्रेम, न्याय का सम्मान, सहायता का भाव, आत्मसंयम – कोई भी समझदार व्यक्ति कभी इन सद्गुणो का विरोध नही करेगा। धर्म की मूलभूत शिक्षा यही है कि क्षणिक सुखो के लिये मनुष्य को इन सद्गुणों की उपेक्षा करके हीन तथा भ्रष्ट जीवन नही बिताना चाहिये। इन सद्गुणो के पूर्ण विकास हेतु साधारण मनुष्य के अनुभव से परे अतीन्द्रिय सत्य या ईश्वर में विश्वास अत्यावश्यक है। विश्व के महान् सन्तो ने इन सिद्धान्तों की अनुभूति करके अपने जीवन मे उन्हे सिद्ध कर दिया है। प्रसिद्ध इतिहासकार अर्नाल्ड टॉयन्बी ने घोषणा की, "भारतीय धर्म एकांगी भावो वाले नही हैं। वे इस बात को स्वीकार करने को राजी है कि इस रहस्य को जानने के लिये अन्य पथ भी हो सकते है। मुझे निश्चित रूप से लगता है कि इस मामले में वे बिल्कुल सही है। भारतीय धर्म-भावना का यह उदार भाव सभी धर्मो के मनुष्यों के लिये मुक्ति का मार्ग है। और इस युग में यदि हमे विनाश से बचना है तो हमें एक परिवार के रूप मे रहना सीख लेना होगा।" इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि परम सत्य के रूप मे स्वीकृत ईश्वर, आत्मा आदि की धारणाएँ व्यक्तियो के चरित्र-गठन मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

डब्ल्यू. एन. सलीवान कहते है, "विज्ञान सत्य के केवल एक आंशिक पहलू से सरोकार रखता है। इस बात के समर्थन मे रंचमात्र भी कारण नही है कि विज्ञान जिन तथ्यो की उपेक्षा करता है, उनकी तुलना में उसके द्वारा स्वीकृत बाते अधिक वास्तविक है। अब हमे यह शिक्षा नही दी जाती कि सत्य का ज्ञान प्राप्त करने का वैज्ञानिक तरीका ही एकमात्र वैध तरीका है। विज्ञान के कर्णधार मानो एक विचित्र उत्साह के साथ इस बात पर बल दे रहे है कि विज्ञान हमें वास्तविकता का एक आंशिक ज्ञान ही प्रदान करता है और विज्ञान द्वारा उपेक्षित हर चीज को मिथ्या समझने की अब हमें कोई जरूरत नहीं।"

प्रो. लेकोम्टे कहते हैं, "असामंजस्य चाहनेवालों के मन में ही विज्ञान तथा श्रद्धा के बीच असामंजस्य रहता है।"

डब्ल्यू. जे. सोलज की उक्ति का स्मरण करना भी यहाँ अप्रासंगिक न होगा, "दर्शन और धर्म के मामलों में विज्ञान मध्यस्थ नही है। तत्त्व सम्बन्धी प्रश्नों के बारे में अन्तिम निर्णय सदैव धर्म और दर्शन के पास ही होना चाहिये।"

परम तत्त्व

अल्डस हक्सले के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'साध्य और साधन' में उनके निम्नलिखित शब्द ध्यान देने योग्य है, "अपने विश्वासों के आलोक मे ही हम परम तत्त्व के स्वरूप के विषय में अपनी सही तथा गलत धरणाओं का निर्माण करते हैं; और अपनी सही तथा गलत धारणाओं के आलोक में हम अपना आचरण निर्धारित करते हैं। ऐसा हमारे निजी जीवन के सम्बन्धों में ही नही, अपितु राजनीति और आर्थिक क्षेत्र में भी घटित होता है। अत: हमारे दार्शनिक विश्वास बिल्कुल अप्रासंगिक न होकर, हमारे सभी कर्मो के अन्तिम निर्णायक तत्त्व हैं।"

सभ्यता की बर्बरता

आज जीवन के हर क्षेत्र में हम इस विश्वास का अभाव पाते है। सर्वत्र और विशेषतया शिक्षित लोगों में न केवल भगवान या न्याय या नैतिकता मे विश्वास का अभाव, अपितु अपने आप मे भी विश्वास का अभाव दृष्टिगत होता है। हमारे प्राय: सभी राष्ट्रीय नेता विश्वास करते हैं कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी का सतत विकास राष्ट्रीय प्रगति और सबलता का साधन है। स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ तथा राजनीतिक जरूरते हमारे देश को

इसकी अपनी परम्परा से दूर ले जा रही हैं। ८० वर्ष पूर्व जहाँ हमारे देश में केवल तीन विश्वविद्यालय थे, वहीं आज उनकी संख्या करीब १५० है। हमारी शिक्षा-प्रणाली में विज्ञान और तकनीकी विषयों ने गौरवपूर्ण स्थान ले लिया है। यहाँ तक कि बालिकाएँ भी विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की ओर आकर्षित हैं। केवल तथ्यों का ज्ञान एकत्र करने पर ही केन्द्रित हमारी शिक्षा-प्रणाली चरित्रवान व्यक्तियों का निर्माण करने में असमर्थ है। जीविका-निर्वाह के लिए कुछ कौशल प्राप्त कर लेना ही शिक्षा का एकमेव उद्देश्य माना जाने लगा है। व्यक्तित्व के समग्र विकास के साथ शिक्षा का कोई सरोकार नहीं है। जीवन की सुख-सुविधाओं में वृद्धि या मनुष्य की निम्न प्रवृत्तियों की तृप्ति को ही जीवन-स्तर में सुधार माना जाता है। आज के युवक का एकमात्र लक्ष्य एक ऐसी नौकरी प्राप्त करना है; जिसमें परिश्रम कम-से-कम और पारिश्रमिक अधिकतम हो। छात्र कई बार हड़ताल करके अपनी परीक्षायें स्थगित करवा लेते हैं और परीक्षाओं की संख्या भी घटवा सकते हैं। वे छूरा या बेल्ट दिखाकर परीक्षकों को धमकी देते हैं। कहीं कहीं तो परीक्षाएँ पुलिस की निगरानी में करानी पड़ती हैं। परीक्षकों को रिश्वत से प्रलोभित करके छात्र उच्च श्रेणी प्राप्त कर सकते हैं। ऐसी शिक्षा के बाद नौकरी पाकर ये छात्र क्या विवेक, अनुशासन, आत्मसंयम और शिष्टाचार की भावना रखकर देश के अच्छे नागरिक बन सकेंगे? ऐसी शिक्षा अनुशासन और संयम की लगाम से रहित एक जंगली घोड़ा बन सकती है, जो औचित्य-ज्ञान दे पाने में असमर्थ और नैतिक मूल्यों के प्रति निष्ठा से रहित हो। वह अपनी इच्छानुसार स्वच्छन्द गति से जहाँ कहीं भी विचरण कर सकता है। इसके फलस्वरूप वह आत्मघाती और सामाजिक रूप से हानिकारक कार्यों को बढ़ावा दे सकता है। उपर्युक्त कथन के प्रमाण के रूप में अनुशासनहीनता, चंचलता और बड़े पैमाने पर दुराचरण विद्यमान हैं। समाज तथा प्रशासन में उच्चपदस्थ लोगों को अपने नैतिक आचरण के द्वारा जनता के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिये। गीता कहती है कि बड़े लोगों की देखा-देखी ही सामान्य जन भी आचरण करते हैं। नेता को दाता होना चाहिये। समाज के हितार्थ उसे अपने हित की आहुति देने में तत्पर रहना चाहिये। पर हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे राजनीतिक नेतागण लोगों को उचित पथ पर अग्रसर कराने और उनके नैतिक स्तर को उन्नत करनेवाले लोगो मे नहीं हैं। आज नेता बनने के इच्छुक लोग राष्ट्र के इतिहास, अर्थशास्त्र या राजनीति विज्ञान के बारे में कुछ भी जानने की परवाह नहीं करते। वे सोचते हैं कि उन्हें किसी प्रशिक्षण की जरूरत नहीं। उन्हें स्वार्थपरायणता ही सब कुछ प्रतीत होता है। मतदाताओं को लुब्ध करनेवाली चालबाजियों का ज्ञान और उनके प्रतिनिधि के रूप में निर्वाचित हो जाना ही उन्हे असली बात प्रतीत होती है। मतदाताओ में से ७०% तो अपढ़ हैं, जो पूरे देश के हित या भविष्य का विचार न करके केवल अपनी तात्कालिक सुविधा की बात सोच पाते हैं। नेतागण इसे भलिभाँति जानते हैं और अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों को पूरा करने हेतु इस स्थिति का लाभ उठाने में ही रुचि रखते हैं। कुछ वर्ष पूर्व भारत के राष्ट्रपति ने कहा था, "राजनेता आज नैतिक सिद्धान्तों का जितना निरादर कर रहे हैं, उतना इसके पहले कभी नहीं हुआ था। जनजीवन के लिये हानिकारक इस आचरण को सुधारना जरूरी है।" आज के संकट की तो आप कल्पना कर सकते हैं। आज सर्वत्र अनैतिकता, भ्रष्टाचार तथा कालाबाजार का साम्राज्य फैला है। हत्या तथा डकैती जैसे अपराधो में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश ने एक बार कहा था कि स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार और उनका शोषण असाध्य नैतिक पतन का लक्षण है। तब दिल्ली शहर मे केवल एक हजार पुलिस-बल थे। आज यह संख्या बढ़कर तीन लाख हो गयी है। पर एक स्त्री दिन में ही दिल्ली की सड़कों पर अकेले जाने में डरती है।

पुरखों की थाती (१०)

अन्य क्षेत्रे कृतं पापं पुण्यक्षेत्रे विनश्यति ।
पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति ।।

– विभिन्न स्थानों में किया हुआ पाप तीर्थक्षेत्रों में नष्ट हो जाता है, परन्तु तीर्थक्षेत्रों में किया हुआ पाप वज्रलेप के समान पक्का हो जाता है।

अनारम्भो हि कार्यस्य प्रथमं बुद्धि-लक्षणम् ।
आरब्धस्यान्तगमनं द्वितीयं बुद्धि-लक्षणम् ।।

– किसी कार्य को (बिना सोचे-समझे) प्रारम्भ न करना ही बुद्धि का लक्षण है और यदि कोई कार्य शुरू ही कर दिया, तो उसे पूरा करना बुद्धि का दूसरा लक्षण है।

अमृतं चैव मृत्युश्च द्वयं देहे प्रतिष्ठितम् ।
मृत्युरापद्यते मोहात् सत्येनापद्यतेऽमृतम् ।।

– मृत्यु और अमृतत्व, दोनों इसी देह में स्थित हैं। मोह से मृत्यु प्राप्त होती है और सत्य से अमृतत्व मिलता है।

कैसा अध:पतन!

भारत में शासन के दौरान अंग्रेज लोगों ने स्थानीय उद्योगो का विनाश करके भारत की प्रचुर धन-सम्पदा को लूटा। श्री ताराचन्द अपने 'स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास' में लिखते हैं, "विलियम डिगबी का अनुमान है कि सम्भवत: पलासी के

युद्ध (१७५७ ई.) से वाटरलू (१८१५ ई.) के बीच एक अरब डालर की राशि भारतीय खजानों से अँग्रेजी बैंकों में स्थानान्तरित हुई थी।'' उन दिनों ४५% लोग दोनों समय भोजन नहीं पाते थे। स्वाधीनता आन्दोलन के नेताओं का लक्ष्य गरीबी उन्मूलन, जनता को शिक्षा प्रदान करना और राष्ट्र का सर्वांगीण विकास करना था। यद्यपि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि स्वाधीनता के बाद के वर्षों में राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में असाधारण विकास हुआ है, परन्तु गरीबी रेखा घटने के कोई संकेत नही हैं।

पाश्चात्य देशों में उद्योगों की सम्पदा बढ़ने के साथ ही श्रमिकगण अपनी शिकायतों के निराकरण की जरूरत के प्रति सचेत हो गये। पर भारत में, देश की गरीबी कुछ हद तक घटने के पूर्व ही श्रमिकों ने हड़ताल आदि के द्वारा अपने अधिकारों के लिये लड़ाई छेड़ दी। हड़तालों और आन्दोलनों द्वारा उनकी माँगों की पूर्ति न होने पर वे सार्वजनिक सम्पत्ति को नष्ट करने अमादा हो जाते हैं, जो सचमुच ही आत्मघाती है। यह आम बात हो गई है कि श्रमिक क्रोध के आवेश में अपने ही कारखाने के उन उपकरणों का नाश कर देते हैं, जिनसे उनका भरण-पोषण हुआ है और हो रहा है। ऐसे विध्वंसक कार्यों में छात्रगण भी सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। किसी के भी द्वारा की गई कथित गलती के लिये करोड़ों रुपयों की सार्वजनिक सम्पत्ति को नष्ट करने की प्रवृत्ति बढ़ती ही जा रही है। अति मूल्यवान सार्वजनिक सम्पत्ति के ऐसे विनाश की खबरें समाचारपत्रों में प्राय: प्रकाशित होती रहती हैं। बंगाल के विद्युत विभाग में एक बार राजनीतिक कारणों से अनेक अयोग्य लोगों की भरती हो गयी थी। इसके फलस्वरूप वहाँ अनुशासन-हीनता और अक्षमता बढ़ती गयी। मशीनों का सही रख-रखाव न होने से, वे खराब हो गयीं, विद्युत उत्पादन गिर गया और विभिन्न कारखानों के उत्पादन में भी बड़ी तेजी से ह्रास आया, जिससे करोड़ों रुपयों का घाटा हुआ। राजनीतिक कारणों से लोगों को रोजगार देने की नीति इन दिनों आम बात हो गयी है। यह एक सर्वज्ञात तथ्य है कि रिश्वतखोरी और कालाबाजारी एक अपवाद की जगह नियम ही बन चुके हैं। यद्यपि सरकार कालाबाजारियों की सम्पत्ति को जब्त करने की नीति घोषित करती रहती है, परन्तु इसे नीति के कार्यान्वयन करने के लिये कोई ठोस प्रयास नहीं किये जाते। क्या यह नैतिक ह्रास का एक लक्षण नहीं है कि इस राष्ट्रीय खतरे से निपटने के लिये ईमानदारीपूर्वक कोई प्रयत्न नहीं किये जा रहे हैं? विशेषज्ञों का कहना है कि अगले ३५ वर्षों में राष्ट्र की जनसंख्या दुगुनी हो जायेगी। इस देश में पर्याप्त शिक्षित ऐसे कितने लोग हैं, जो यह कल्पना कर सकते हैं कि धरती पर इस जनसंख्या दबाव के साथ जीविका-निर्वाह का संघर्ष कितना भयानक होगा? गाँधीजी ने स्वतन्त्रता मिलने के बाद देश में राम-राज्य के आगमन का सपना देखा था। उनका विश्वास था कि चरित्रवान ईमानदार लोगों के संगठित प्रयासों का यह सुफल मिलेगा। परन्तु आज की राजनीतिक स्थिति राष्ट्र के बुनियादी स्तम्भों को नष्ट कर रही है।

यद्यपि नैतिक ह्रास भयावह स्तर तक पहुँच गया है, तो भी देश का कोई चिन्तक, धार्मिक नेता, राजनैतिक दिग्गज इससे चिन्तित नहीं लगता। ऐसा नहीं लगता कि उन्हें अपने चतुर्दिक हो रही घटनाओं की कोई परवाह है। विशेषज्ञों द्वारा आपस में संगठित होकर इस गम्भीर मसले पर विचार-विमर्श किये जाने की भी कोई सूचना नहीं है। क्या हम यह आशा कर रहे हैं कि एक दिन यह सब स्वत: ही पूर्ववत् सुव्यवस्थित हो जायेगा?

ज्ञान का स्वर

पिछली शताब्दी के दौरान ही स्वामी विवेकानन्द ने यह चेतावनी दी थी, ''सभी राजनीतिक तथा सामाजिक प्रणालियाँ और संगठन मूलत: मनुष्य की अच्छाई पर निर्भर करते हैं। संसद के कानून के द्वारा लोगों को सदाचारी नहीं बनाया जा सकता। इसकी कोई गारंटी नहीं है कि संसद द्वारा अच्छा कानून बना देने से कोई राष्ट्र अपने आप सबल हो जायेगा। परन्तु यदि किसी देश के लोग अच्छे और महान् हैं, तो वह देश स्वत: अच्छा और महान् हो जायेगा। संसार की सभी प्रकार की सम्पदाओं में मनुष्य सर्वाधिक मूल्यवान है।

''सब बातों से यही प्रकट हो रहा है कि समाजवाद या जनता द्वारा शासन का कोई रूप, उसे आप चाहे जिस नाम से पुकारें, उभरता आ रहा है। लोग निश्चय ही चाहेंगे कि उनकी भौतिक जरूरतों की पूर्ति हो, वे कम काम करें, उनका शोषण न हो, युद्ध न हो और भोजन अधिक मिले। इस बात का हमारे पास क्या प्रमाण है कि यह या कोई दूसरी सभ्यता, जब तक कि वह धर्म पर, मनुष्य के भीतर की अच्छाई पर निर्भर न हो, स्थायी होगी? विश्वास कीजिए, धर्म इस समस्या की जड़ तक पहुँचता है। यदि वह ठीक है, तो सब ठीक है।

''संसदीय अधिनियम, सरकार, राजनीतिक प्रशासन – ये सब वस्तुत: हमारे अन्तिम लक्ष्य नहीं, अपितु साधन हैं। इनके परे एक लक्ष्य है, जो इन तथ्यों में से किसी से भी शासित नहीं होता है। ईसा मसीह को बोध हुआ कि नैतिकता और हृदय की पवित्रता शक्ति के सच्चे स्रोत हैं। हमारे ऋषियों ने भी इसी सत्य की घोषणा की। इस प्रकार यह सत्य है कि धर्म समस्या के मूल बिन्दु पर प्रहार करता है और यह मनुष्य का चरित्र-गठन करता है।

''धर्म की कोई गल्ती नहीं है। मेरा दावा है कि हिन्दू समाज की उन्नति के लिये धर्म का विनाश जरूरी नहीं है और समाज की यह दुरवस्था धर्म के कारण नहीं है, बल्कि धर्म को समाज पर जिस ढंग से लागू किया जाना चाहिये था, उस

प्रकार लागू नहीं किया गया। मैं इस कथन का प्रत्येक शब्द अपने प्राचीन शास्त्रों के आधार पर सिद्ध करने को तैयार हूँ। इस दुरवस्था को मिटाया जाना चाहिये, परन्तु धर्म का नाश करके नही, अपितु हिन्दू धर्म की महान् शिक्षाओं का अनुसरण करके ऐसा किया जाना चाहिये।

"अत: भारत में किसी भी प्रकार का सुधार लाने के पहले धर्म-प्रचार आवश्यक है। भारत को समाजवादी या राजनीतिक विचारों से प्लावित करने के पहले आवश्यक है कि इसमें आध्यात्मिक विचारों की बाढ़ ला दी जाय। सर्वप्रथम, हमारे उपनिषदो, पुराणों और अन्य सब शास्त्रों में जो अपूर्व सत्य छिपे हुए हैं, उन्हें इन सब ग्रन्थों के पन्नों से बाहर निकालकर, मठों की चहारदीवारियाँ भेदकर, वनो की शून्यता से दूर लाकर, कुछ सम्प्रदाय-विशेषों के हाथो से छीनकर देश में सर्वत्र बिखेर देना होगा।

"हमारे देश में राष्ट्रीय भावना जगाने का रहस्य, लुप्त प्रतीत हो रही हमारी आध्यात्मिक शक्ति को पुनर्जीवित कर देने मे निहित है। यदि हमें अपना अभ्युत्थान करना है, तो आपस में झगड़ना बन्द कर देना चाहिये। अपने सम्मुख यह आदर्श रखो – 'धर्म को बिना हानि पहुँचाये जनता की उन्नति'।"

कुल मिलाकर, जनता में आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न करना मानो राष्ट्र के खून को साफ करना है और पौधों पर मानो उचित प्रकार के कीटनाशक छिड़कना है। शिक्षित तथा ज्ञानी लोगों को प्रयासपूर्वक आध्यात्मिक विचारों को आत्मसात करके लोगों में धर्म का सन्देश फैलाना चाहिंये। चाहे कोई भी दल विजय प्राप्त करे, परन्तु मनुष्य का हृदय पवित्र न होने पर स्वार्थपरता ही हमारे राष्ट्र-शरीर को प्रभावित करेगी। एक पवित्र-हृदय व्यक्ति की भला कौन बराबरी कर सकता है? कोई इमारत मजबूत तभी होती है, जब इसकी प्रत्येक ईट मजबूत और अपने सही स्थान पर दृढ़ हो। जलधारा बनाने मे जल की प्रत्येक बूँद का योगदान होता है। अन्न-भण्डार को भरने में हर दाने का योगदान होता है। व्यक्तिगत चरित्र-सुधार द्वारा ही हम सामाजिक कल्याण की आशा कर सकते हैं। चरित्र-विकास की बुनियाद ईश्वर और स्वयं में विश्वास तथा अन्तत: भलाई के विजयी होने के विश्वास में निहित है।

विश्वास की स्थापना

ऐसे कोई आसार नहीं दिखते कि हमारे देश के शिक्षित लोग आध्यात्मिकता, धर्म और ईश्वर जैसी धारणाओं मे कभी रुचि लेंगे। विडम्बना की बात यह है कि धर्म के दुर्बल अनुयायी ही धर्म की नींव को दुर्बल बनाते हैं। आज आध्यात्म की नीव अधिकाधिक दुर्बल होती जा रही है। धर्म की सही सोच रखनेवाले लोगो का यह दृढ़ विचार है कि आध्यात्मिक भाव का अभाव ही आज के विश्व के समस्त नैतिक ह्रास के लिये सीधे जिम्मेदार है। आध्यात्मिक नींव के दुर्बल होने का क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह नही कि धर्म के सिद्धान्त अपनी उपयोगिता खो चुके है। धार्मिक प्रवृत्ति के लोग, अपने दोषो के चलते उन सिद्धान्तों के पालन में शिथिल होकर उनमे श्रद्धा खो चुके है। पर वे सिद्धान्त आज भी हितकर हैं। न्यूटन की खोज के पहले भी गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त मौजूद था। हमारे द्वारा विस्मृत तथा न दिखनेवाली चीजों का भी अस्तित्व है।

परन्तु प्रकृति के नियमो को जान लेने पर हम अपने सुख और हित में वृद्धि हेतु इसकी शक्तियो को नियंत्रित कर सकते है। धर्म के नियम सनातन सत्यों पर आधारित है। विभिन्न कारणो से कोई समाज धर्म मे अविश्वासी हो सकता है। क्षणिक और प्रलोभनकारी चीजो से विमोहित होकर लोग धर्म के सिद्धान्तो से विमुख हो सकते है। यह धार्मिक ह्रास का प्रारम्भ है। यदि हम धर्म का अनुसरण नहीं करते, तो धार्मिक सिद्धान्त गलत नही हो जाते। इससे घाटा मनुष्य का ही होता है। यदि हम स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के नियमों का पालन नही करते, तो इससे कष्ट किसे मिलेगा? नियम भंग करनेवाले को ही तो कष्ट मिलता है। हम इस क्षति से कैसे बचें? भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को बताते है, "इस धर्म का रहस्य, अतीत काल में मैंने सूर्यदेव को बताया था। सूर्य ने इसे मनु को दिया। मनु ने यह रहस्य इक्ष्वाकु को बताया। अतीत काल के आध्यात्मिक प्रवृत्तिवाले सम्राट् इस परम्परा को जानते थे। परन्तु हे अर्जुन! काल के प्रवाह में यह परम्परा खण्डित हो जाने से यह ज्ञान लुप्त हो गया।" दूसरे शब्दो मे, इन्द्रिय-संयम से रहित दुर्बल लोगो के हाथो मे चले जाने पर, यह ज्ञान लुप्त हो गया। वस्तुत: यह ज्ञान लुप्त नही हुआ, बल्कि इस योग के तथाकथित जानकार लोगो ने अपने स्वार्थ-साधन हेतु प्रयोग करके इसे बदनाम और इसका पतन किया। लोग स्वभावत: इसमे अपना विश्वास खो बैठे। अब धर्म के पुनरुत्थान का अर्थ है, ऐसी श्रद्धा का पुनरुत्थान जिससे लोग धार्मिक नियमो के दृढ़तापूर्वक अनुसरण मे तत्पर हो। सन्त, महापुरुष और ईश्वर के अवतार पृथ्वी के लोगो के मन मे यह विश्वास स्थापित करने हेतु प्रयत्नशील है। हमारे देश मे सारे सामाजिक और राजनीतिक विकास के पीछे आध्यात्मिक व्यक्तियो का अमोघ मार्गदर्शन विद्यमान है।

परन्तु शिक्षित होने का दावा करनेवाले और उच्च पदो पर बैठे तथा सामर्थ्यवान लोगो ने दुर्भाग्यवश हमारे देश की इस गौरवमयी आध्यात्मिक परम्परा को विस्मृत कर दिया है।

राष्ट्र के समक्ष आदर्श

पुराकाल से ही भारत का ऐसा विश्वास था कि ईश्वर और आत्मा आदि इन्द्रियातीत तत्त्व भी सनातन सत्य हैं और इनकी अनुभूति के लिये वह सतत प्रयाशी रहा है। ईश्वर या आत्मा

की अनुभूति को व्यक्ति या राष्ट्र के लिए सर्वोच्च लक्ष्य माना गया था। इन इन्द्रियातीत आदर्शों में इतनी रुचि होने का क्या कारण था? इसका कारण इस तथ्य में ढूँढ़ा जा सकता है कि बीच बीच में इस देश मे दैवी गुणों तथा सच्चे आध्यात्मिक ज्ञान से युक्त महापुरुषो का आविर्भाव होता रहा है। पाश्चात्य जगत् को यदि 'विज्ञान का घर' कहें, तो निस्सन्देह भारत को 'धर्मो और आध्यात्मिक ज्ञान का घर' माना जा सकता है। भारत में सामाजिक आचार-संहिताओं का निर्माण आध्यात्मिक पूर्णता या मोक्ष प्राप्त करने के उद्देश्य से आध्यात्मिक जीवन की सुदृढ़ नींव पर किया गया। समाज का हर व्यक्ति अपने जन्मजात गुणो के अनुसार विवेकपूर्वक अपने कर्तव्यों को पूरा करके आध्यात्मिक पूर्णता या मोक्ष प्राप्त कर सकता था। पूर्वकाल के महापुरुषो का यह दृढ़ विश्वास था। ये विचार ग्रन्थो के जड़ पृष्ठो मे ही नहीं, अपितु आचरण में उतारे जाते थे। इतिहास ऐसे आचरण के यथेष्ट दृष्टान्त देता है।

शक्ति-परीक्षण

एक पाश्चात्य दार्शनिक ने एक बार कहा था, "हमारे पास एक-दूसरे से प्रेम करने को प्रेरित करनेवाले तो नहीं, परन्तु एक-दूसरे से घृणा तथा कलह करने को उकसाने वाले पर्याप्त धर्म हैं।" दूसरे शब्दो में कहें तो हम धर्म की गौण बातों के बारे मे एक-दूसरे से झगड़ते रहते हैं।"

क्या ईश्वर ने ही सभी प्राणियों में प्राण-संचार नहीं किया है? श्रीरामकृष्ण कहा करते थे – गाँव के तालाब के पदार्थ को कोई 'जल' तो कोई 'पानी' कहता है। जीवन के सभी रूपों को क्रियाशील बनानेवाली शक्ति की विभिन्न धर्म के अनुयाइयो द्वारा विभिन्न प्रकार से अनुभूति और उपासना की गयी है। आज भी लोग इस मूलभूत सत्य से अनभिज्ञ रहकर आपस मे झगड़ते हुए कहते हैं, "हमारे भगवान बड़े हैं, तुम्हारे छोटे हैं।" "हमारा धर्म सत्य है, तुम्हारा धर्म झूठा है।" मनुष्य की इस अज्ञानता पर भगवान शायद हँसा करते होंगे।

यदि ईश्वर हमारे लक्ष्य हैं, तो आध्यात्मिक जीवन ही पथ है। भय, क्रोध, चिन्ता इत्यादि भगवान की ओर ले जानेवाले मार्ग की बाधाएँ हैं। सम्भवत: वे भक्त की ईश्वर मे विश्वास-निष्ठा की परीक्षाएँ हैं। जब भौकता हुआ कुत्ता हमे काट खान को दौड़ता है, तो हम घर के मालिक को पुकारते हैं। घर के मालिक आकर कुत्ते को शान्त करके हमारा स्वागत करते हैं। जब कभी आपको मानसिक कठिनाइयाँ सताती हैं, तो आप भगवान को पुकारकर और उनकी शरण में जाकर राहत पाते हैं। अँधेरा हो तो क्या हम केवल "यहाँ अँधेरा है, अँधेरा है" – चिल्लाकर ही अँधेरे को मिटा सकते है? केवल प्रकाश ही अँधेरे को मिटा सकता है। चिन्ता व भय से त्रस्त हो जाने पर. केवल उनका रोना रोने से आपको राहत नही मिल सकती। उनसे बच निकलने के लिये हमें ज्ञान के प्रकाश की जरूरत है। हमारे मन और हृदय को प्रबुद्ध हो जाना चाहिये।

चिन्ताएँ मिटें, हृदय और मन खिलें

चिन्ता हमारे जीवन को निगल जाने मे समर्थ एक भयंकर घातक शक्ति है। दीमक लगे चन्दन-वृक्ष की जड़ो के समान कोई चिन्ताग्रस्त व्यक्ति उचित निर्णय और विवेक की क्षमता को खोकर विनाश के गर्त में जा सकता है। वह भूल जाता है कि उसके भीतर अनन्त शक्तियाँ छिपी हैं। वह खेद करता है, "मैं मूर्ख, दुर्बल तथा अक्षम हूँ।" आलस्य की गोद में जाकर इन्द्रियो का दास बनकर वह भौतिक सुखो की छाया में पलता है; क्रोध और घृणाभाव के चलते अपने भाइयों के प्रति हिंसा में लिप्त होकर भस्मासुर की भाँति अपने स्रष्टा पर ही प्रहार करता है। आज भारत में ईश्वर या धर्म के नाम पर जो खून-खराबा हो रहा है, इसका मूल कारण आधुनिक मानव मे ही निहित है। आधुनिकता के छद्मवेष में वह चिन्ता, भय व अन्य मनोविकारों से ग्रस्त होकर मानसिक रूप से स्वार्थी, संकीर्ण तथा चंचल हो गया है। मानव-सभ्यता को विध्वंस के कगार पर जाने से रोकने हेतु लोगो के हृदय में भाई-चारे, उदारता, नि:स्वार्थता का विकास होना चाहिए। व्यक्ति के भले होने पर, उसके मन से चिन्ताएँ हटेगी तथा प्रेम, मित्रता व सहयोग-भाव को स्थान मिलेगा और तब सर्वत्र तुष्टि, शान्ति, सुख एवं हित की सुरभित वायु प्रवाहित होगी। समाज की उन्नति एवं सुख के लिये आज हमें इसी की जरूरत है। ❖(क्रमश:)❖
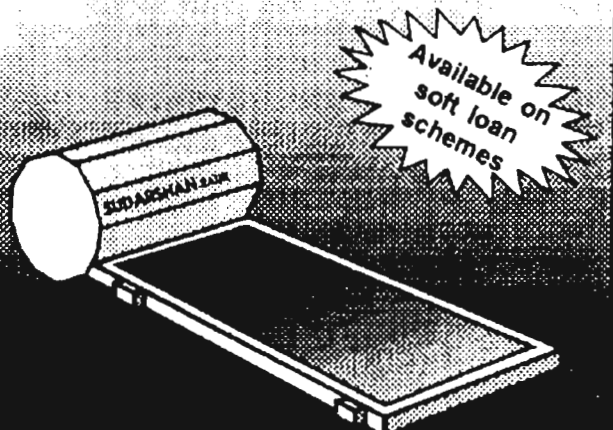
सद्‌गुण और ज्ञान

स्वामी सत्यरूपानन्द

यदि हम संसार पर एक विहंगम दृष्टि भी डालें, तो यह स्पष्ट दीख पड़ेगा कि संसार में कुछ लोग बलवान हैं तो कुछ लोग निर्बल, कुछ सम्पन्न हैं तो कुछ दरिद्र और अभावग्रस्त। कुछ स्वस्थ हैं, तो कुछ रुग्ण। कुछ लोग सुखी हैं तो कुछ लोग दुखी, कुछ लोग आनन्दमग्न हैं तो कुछ लोग विषाद में डूबे हुए हैं।

ऐसा क्यों है? यदि हम इन बातों पर विचार करें, इनका विश्लेषण करें तो हम पाएँगे कि संसार में जो लोग सुखी हैं, सम्पन्न हैं, बलवान तथा नीरोगी हैं, उन सभी में सद्‌गुणों की बहुतायत होती है या अज्ञान आवरण झीना हो चुका होता है।

वे सभी लोग किसी-न-किसी विषय में सिद्धहस्त तथा दक्ष होते हैं। वे लोग अपने सभी कार्य निपुणतापूर्वक करते हैं। दूसरे शब्दों में उनमें ऐसे सद्‌गुण हैं, जिसने उन्हें उन व्यक्तियों की तुलना में अधिक सुखी और सम्पन्न बनाया है, जिनमें वे गुण नहीं हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि गुणवान तथा ज्ञानी व्यक्ति ही ससार में सुख, शान्ति और आनन्द प्राप्त करते हैं। आनन्दमय जीवन का रहस्य ही है सद्‌गुण तथा ज्ञानसम्पन्न होना। सद्‌गुणी तथा ज्ञानी व्यक्ति ही भाग्यवान होता है। समाज में प्रायः यह देखा जाता है कि अभागे दीन-हीन व्यक्तियों में प्रायः सद्‌गुण तथा ज्ञान का अभाव रहता है। अतः वह दुखी और अभागा रह जाता है।

एक ही परिवार में सगे भाई-बहनों में भी ऐसे उदाहरण देखने को मिल जाते हैं, जहाँ एक भाई या बहन सम्पन्न है और दूसरा अकर्मण्य, दुखी और विपन्न है। इसके मूल में भी वही कारण है। एक व्यक्ति में सद्‌गुण और ज्ञान विद्यमान है तथा दूसरे में इसका अभाव। बिना गुण और ज्ञान के व्यक्ति में सामर्थ्य उत्पन्न नहीं हो सकता और हम सभी यह जानते हैं कि सामर्थ्य के बिना संसार में कोई भी कार्य सफल नहीं हो सकता, असफल कार्य सदैव दुख और अभाव का ही कारण होता है।

ज्ञान जब जीवन के व्यवहार में उतरता है तभी उससे सामर्थ्य उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ किसी व्यक्ति को भौतिक-शास्त्र, रसायन-शास्त्र का प्रचुर ज्ञान हो, पर यदि वह व्यक्ति उस ज्ञान को व्यावहारिक रूप न दे सके, उसे व्यावहारिक जीवन के लिए उपयोगी न बना सके तो उसके ज्ञान से सामर्थ्य उत्पन्न नहीं हो सकता। अतः जीवन में ऐसा ज्ञान अर्जित करना चाहिए जो व्यावहारिक जीवन को उपयोगी एवं उन्नत कर सके तथा व्यक्ति के जीवन को बहुजन हिताय बहुजन सुखाय के प्रति समर्पित करे।

किन्तु ऐसा न होकर हमारी अर्जित विद्या एवं व्यावहारिक ज्ञान केवल हमारे निजी स्वार्थ की पूर्ति में ही लगा रहे, हम दूसरों के हित और सुख की ओर ध्यान न दें तो हमारा ज्ञान एवं तज्जनित सामर्थ्य अन्त में हमारे दुखों का ही कारण होगा।

अतः ज्ञानार्जन के प्रारम्भ से ही यह लक्ष्य सदैव अपने मनश्चक्षु के सामने रखना चाहिए कि हमारे ज्ञानार्जन तथा सामर्थ्य प्राप्ति का लक्ष्य निज स्वार्थ पूर्ति एवं भोग प्राप्ति नहीं है। उसका लक्ष्य तो बहुजन हिताय बहुजन सुखाय ही है। यह इसलिए कि नैतिक तथा आध्यात्मिक जगत का यह एक अटल नियम है कि व्यक्ति दूसरों को सुखी करने के प्रयत्न द्वारा स्वयं सुखी हो सकता है। दूसरों का दुख दूर करके ही व्यक्ति स्वयं दुखों से मुक्त हो सकता है। एक और विशेष बात की ओर ध्यान देना आवश्यक है और वह यह कि केवल अर्थकरी विद्या, केवल रोजी-रोटी कमानेवाली विद्या जीवन को सफल और पूर्ण नहीं बना सकती।

भौतिक पक्ष से भिन्न मनुष्य के व्यक्तित्व का एक नैतिक और आध्यात्मिक पक्ष भी है और जब तक इस पक्ष के पोषण तथा पुष्टि की भी व्यवस्था नहीं होती, मनुष्य के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं हो पाता और हम सभी जानते हैं कि अर्ध-विकसित व्यक्तित्व मनुष्य को शान्ति और सुख प्रदान नहीं कर सकता।

अतः जीवन में सुख-शान्ति प्राप्त करने के लिए जीवन को पूर्ण और सफल बनाने के लिए, अर्थकरी विद्या के साथ साथ नैतिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान भी प्राप्त करना परम आवश्यक है। इस ज्ञान के साथ साथ जीवन में नैतिक एव आध्यात्मिक मूल्यों का आचरण परम आवश्यक है। नैतिक और आध्यात्मिक ज्ञान तभी फलीभूत होता है जबकि वह व्यावहारिक आचरण में आता है। अन्यथा नैतिक और आध्यात्मिक ज्ञान के सिद्धान्तों का केवल बौद्धिक ज्ञान जीवन में विशेष उपयोगी नहीं होता।

उपनिषद् में इसे परा और अपरा विद्या कहा गया है। परा विद्या को आध्यात्मिक ज्ञान तथा अपरा विद्या को भौतिक ज्ञान कहा जाता है। उपनिषद् इन दोनों विद्याओं के अर्जन का उपदेश देते हैं। इन दोनों विद्याओं के ज्ञान से ही जीवन सन्तुलित तथा सफल होता है।

जीवन में सफलता के लिए इन दोनों विद्याओं का साथ साथ अभ्यास करना आवश्यक होता है। किसी एक के मूल्य पर दूसरे की उपेक्षा या अवहेलना नहीं करनी चाहिए। इस बात की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए कि अर्थकरी विद्या के उपार्जन के प्रयत्न और मोह में आध्यात्मिक और नैतिक विद्या की ओर दुर्लक्ष्य न हो जाए। वह अधूरी न रह जाए।

इस बात का ध्यान रखकर दोनों विद्याओं का सन्तुलित तथा यथोचित अर्जन जीवन को सफल और सार्थक बनाता है। ❑

हितोपदेश की कथाएँ (३)

(पिछले अंकों में आपने पढ़ा कि एक कौए ने सुबह उठते ही देखा कि एक बहेलिए ने आकर जंगल में जाल फैला दिया। बाद में कबूतरों का एक झुण्ड अपने राजा चित्रग्रीव का कहना न मानकर चावल के लोभ मे नीचे उतरकर जाल में फँस गया। बहेलिए के आने के पूर्व ही वे एक साथ जोर लगाकर जाल के साथ ही ऊपर उड़ गये। चित्रग्रीव उन्हे अपने मित्र हिरण्यक नामक चूहे के पास ले गया, जिसने जाल को काटकर कबूतरों को मुक्त कर दिया। कौआ सब देख रहा था। उसने भी हिरण्यक चूहे से मित्रता जोड़ने का प्रस्ताव किया, पर चूहे ने कहा कि हम भक्ष्य और भक्षक है, अत: हमारी मित्रता नही हो सकती। समर्थन में उसने कौए, हिरन तथा सियार के बीच मित्रता की कथा सुनाई। इसके बाद...)

कथा ३

गंगाजी के किनारे गिद्धकूट नामक पर्वत पर एक बड़ा भारी पाकड़ का वृक्ष था। उसकी एक कोटर में जरद्गव नाम का एक गिद्ध रहा करता था। दुर्भाग्यवश उसके नाखून गल गये थे और आँखें फूट चुकी थी। उस वृक्ष पर रहनेवाले अन्य पक्षी कृपा करके अपने भोजन में से थोड़ा थोड़ा उसे दे दिया करते थे। वह इसी से जीवित रहता था। एक बार दीर्घकर्ण नाम का एक बिलाव पक्षियो के बच्चे खाने की इच्छा से वहाँ आया। उसे आते देखकर पक्षियो के बच्चे भयभीत होकर शोर मचाने लगे। यह सुनकर जरद्गव ने गम्भीर स्वर में कहा – "कौन आ रहा है?" दीर्घकर्ण ने गिद्ध को देख भय के साथ मन-ही-मन कहा – "हाय, मैं तो मारा गया। परन्तु कहा है, 'भय से तभी तक डरना चाहिये, जब तक कि वह सामने न उपस्थित हो जाय। जब वह आ ही पड़े, तब मनुष्य को उचित उपाय करना चाहिये।' अब तो मैं यहाँ से भाग नहीं सकता, अत: जो होना है, सो होगा। तब तक क्यों न इसके मन में विश्वास उत्पन्न करके पास जाऊँ।"

ऐसा विचार करके वह समीप जाकर बोला – "आर्य! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।" गिद्ध ने पूछा – "तू कौन है?" उसने उत्तर दिया – "मैं बिलाव हूँ।" गिद्ध ने कहा – "चल भाग, नही तो मैं तुझे मार डालूँगा।" बिलाव बोला – "पहले मेरी बात सुन लीजिये। फिर यदि आप मुझे मारने योग्य ही समझे, तो मार डालियेगा। क्योंकि – 'क्या कोई जाति मात्र से मार डाला या पूजा जाता है? किसी का आचरण जानने के बाद ही वह मारने या पूजने के योग्य होता है।' "

गिद्ध ने कहा – "तो बता, यहाँ किसलिये आया है?" उसने कहा – 'मैं यहाँ गंगा के तट पर रहकर नित्य गंगास्नान करता हूँ। मैंने मांस खाना छोड़ दिया है और ब्रह्मचर्यपूर्वक चान्द्रायण व्रत कर रहा हूँ। यहाँ के सब पक्षी सदा आपकी प्रशंसा करते हुए कहते थे कि आप बड़े धर्मात्मा एवं ज्ञानी हैं? इसीलिए आप जैसे ज्ञानी तथा वयोवृद्ध से धर्म की बातें सुनने आया हूँ। पर आप तो ऐसे धर्मात्मा निकले कि मुझ अतिथि को ही मारने चले। गृहस्थों का तो धर्म यह है कि 'यदि शत्रु भी घर आ जाय तो उसका समुचित आतिथ्य-सत्कार करे। क्योंकि जब वृक्ष को काटनेवाला भी वृक्ष के समीप पहुचता है तो वह उसके ऊपर से अपनी छाया नहीं हटाता।' यदि संयोग से धन न हो तो केवल बातों से ही अतिथि का सत्कार कर देना चाहिये। क्योंकि – 'तृण, भूमि, जल, और मधुर वाणी – ये सज्जनों के घर में अवश्य होते हैं।' फिर 'गुणविहीन प्राणी पर भी सज्जन लोग दया ही करते हैं। क्योंकि चन्द्रमा चाण्डाल के भी घर से अपनी चाँदनी नहीं हटाता।' और भी – 'अतिथि जिसके घर से निराश होकर लौटता है तो वह अपने पाप उसे देकर उसके कमाये हुए पुण्य लेकर चला जाता है।' और – 'यदि किसी उत्तम पुरुष के घर कोई नीच अतिथि आ जाय तो भी उसका यथोचित सत्कार करना चाहिये। क्योंकि अतिथि सर्व-देवमय माना जाता है।' "

गिद्ध बोला – "बिलाव मांसाहारी होता है और यहाँ पर पक्षियों के बच्चे रहते हैं। इसी से मैं ऐसा कहता हूँ।" यह सुनकर बिल्ले ने (दोनो हाथों से) पृथ्वी का स्पर्श करके अपने कान पकड़े और बोला – "मैंने धर्मशास्त्र सुनकर और विरक्त होकर यह कठिन चान्द्रायण व्रत लिया है। शास्त्रों में परस्पर मतभेद है, तो भी 'अहिंसा श्रेष्ठ धर्म है' – इस बात पर सभी एकमत हैं। क्योंकि – 'जो लोग सब प्रकार की हिंसा छोड़ चुके हैं और सब कुछ सहन कर लेते हैं, सबके आश्रय-स्वरूप वे लोग स्वर्गगामी होते हैं।'

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति ।।

– 'धर्म ही एक ऐसा मित्र है कि जो प्राणी के मर जाने पर भी उसके साथ जाता है; बाकी सब तो इस देह के साथ ही नष्ट हो जाते हैं।'

"फिर 'जो प्राणी किसी का मांस खाता है और जिसका मांस खाया जाता है, उन भक्ष्य और भक्षक दोनों का अन्तर तो देखिये। एक को क्षण भर के लिये आनन्द मिलता है, परन्तु दूसरा बेचारा सदा के लिये इस संसार से उठ जाता है।' और 'मैं मर जाऊँगा – यह सोचकर प्राणी को जो दुख होता है, अच्छी तरह अनुमान करके भी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।' और सुनो – 'जब वन में आपने आप उगे हुए शाक से भी उदर भरा जा सकता है, तब इस जले पेट के लिये कौन इतना बड़ा पाप करने जायेगा।' " इस प्रकार गिद्ध को विश्वास दिलाकर बिलाव उसी वृक्ष की कोटर में रहने लगा।

कुछ दिन बीतने के बाद वह प्रतिदिन चिड़ियों के बच्चों को पकड़-पकड़कर खाने लगा। जिनके बच्चे खा लिये गये

थे, वे पक्षी शोक से पीड़ित होकर रुदन करते हुए छानबीन करने लगे। बिलाव को यह बात मालूम होने पर वह कोटर से निकलकर भाग गया। खोजते खोजते जब पक्षियों को वृक्ष की कोटर मे बच्चो की हड्डियाँ मिली। तब उन्होंने कहा – "इस गिद्ध ने ही हमारे बच्चे खाये हैं।" ऐसा सोच कर उन सबने मिलकर गिद्ध को ही मार डाला। इसीलिए मै कहता हूँ – "जिसका कुल-शील ज्ञात न हो, उसे आश्रय नही देना चाहिए।" यह सुनकर सियार ने क्रोधपूर्वक कहा – "जिस दिन मृग से आपकी पहली भेंट हुई होगी, उस दिन इनको आपके भी तो कुल-शील का ज्ञान न रहा होगा। तो फिर कैसे आपका इनके साथ प्रेम दिनो-दिन बढ़ता ही जा रहा है ! 'जहाँ कोई विद्वान् नहीं रहता, वहाँ साधारण बुद्धिवाले व्यक्ति की भी प्रशंसा होने लगती है। जैसे कि बिना वृक्षवाले देश में रेड़ी का पौधा भी वृक्ष माना जाता है।' और फिर –

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदार-चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।

'यह अपना है या पराया – ऐसा विचार क्षुद्र बुद्धिवालों का होता है। जो उदार चरित्र के लोग हैं, उनके लिए तो पूरा भूमण्डल ही अपना कुटुम्ब है।' जैसे ये मृग मेरे मित्र हैं, वैसे ही आप भी मेरे मित्र हैं।"

इस पर मृग ने कहा – "इस प्रकार के निरर्थक वाद-विवाद से क्या लाभ? चलो, हम आपस में विश्वासजनक बातें करते हुए एक साथ आनन्द से रहें। क्योंकि –

न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं न किश्चित्कस्यचिद्रिपुः ।
व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते रिपवस्तथा ।।

– 'न कोई किसी का मित्र है, न कोई किसी का शत्रु। संसार में अच्छे-बुरे व्यवहार से ही मित्र और शत्रु होते हैं।' "

कौए ने कहा – "ऐसा ही सही।" (रात भर एक साथ विश्राम करने के बाद) सबेरा होने पर वे अपनी अपनी इच्छानुसार विभिन्न दिशाओं में चले गये।

एक दिन सियार ने एकान्त में मृग से कहा – "मित्र! इस वन में एक स्थान पर अनाज से भरपूर एक खेत है। चलो, मै वहाँ ले चलकर दिखाता हूँ।" सियार ने उसे ले जाकर खेत दिखा दिया और हिरन हर रोज वहाँ जाकर फसल खाने लगा। एक दिन खेत के मालिक ने उसे फसल चरते देखकर खेत में जाल बिछा दिया। अगले दिन चरने के लिए आकर मृग उसमे फँस गया और सोचने लगा – "इस यमपाश के समान बन्धन से मुझ दुखिया को मित्र के सिवाय और कौन छुड़ा सकता है!" तभी सियार वहाँ आ पहुँचा और हिरन को जाल मे फँसा देखकर सोचने लगा – "मेरे कपट की योजना से मनोरथ सफल हुआ। जब खेत का मालिक इसे मारकर खाल खीचेगा तो रक्त-मांस से सनी हुई हड्डियाँ तो मुझे अवश्य मिलेगी। मेरे लिए वे ही पर्याप्त होंगी।" इधर हिरन ने सियार को देखा, तो बड़े आनन्द के साथ कहने लगा – "मित्र! तत्काल मेरे बन्धन काटकर मुझे विपत्ति से छुटकारा दिलाओ। क्योंकि –

आपत्सु मित्रं जानीयाद्युद्धे शूरमृणे शुचिम् ।
भार्यां क्षीणेषु वित्तेषु व्यसनेषु च बान्धवान् ।।

– 'आपत्ति में मित्र की, युद्ध मे वीर की, ऋण में पवित्रता की, निर्धनता में स्त्री की और दु:ख मे बान्धवो की परीक्षा होती है।'

उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे ।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठिति स बान्धवः ।।

– 'उत्सव में, दुख में, अकाल में, युद्ध होने पर, कचहरी में और श्मशान में जो साथ देता है, वही सच्चा मित्र है।' "

सियार ने बार बार जाल को देखकर सोचा – "फन्दा तो मजबूत है।" फिर बोला – "मित्र! यह जाल चमड़े की ताँत से बना हुआ है, अत: आज रविवार के दिन मै इसका दाँत से कैसे स्पर्श करूँ? भाई! यदि तुम बुरा न मानो तो सबेरे तुम जो कहोगे, वह कर दूँगा।" इतना कहकर वह पास की झाड़ी में छिपकर बैठ गया।

शाम तक हिरन न लौटा देखकर कौआ इधर-उधर खोजने लगा। अन्त में उस स्थान पर पहुँचकर और उसे जाल मे फँसा देखकर कहने लगा – "मित्र! यह क्या?" हिरन ने कहा – "मैंने तुम्हारी बात की अवहेलना की थी, यह उसी का फल है। कहा भी है – 'जो अपने शुभचिन्तक मित्र की बात नही सुनता तो विपत्ति सदा उसके समीप विद्यमान रहती है और वह अपने शत्रुओ की प्रसन्नता का कारण बनता है।' "

कौए ने कहा – "वह धूर्त कहाँ है?" हिरन बोला – "मेरे मांस के लिये यही कही छिपकर बैठा है।" कौए ने कहा – "सखे, मैंने तुमसे पहले ही कहा था। यह सोचकर ही विश्वास नही कर लेना चाहिए कि 'मेरा कोई अपराध नही है, अत: यह मेरा कोई अनिष्ट नही करेगा, क्योकि क्रूर लोगो से गुणिया को भी भय बना रहता है।' और 'जिसकी आयु पूरी हो जाती है, उसे बुझते हुए दीपक की गन्ध नही मिलती, मित्र की बात पर श्रद्धा नही होती और अरुन्धती नक्षत्र दिखाई नही देता।'

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ।।

– 'जो पीठ पीछे काम बिगाड़ता हो और मुँह पर मीठी मीठी बातें करता हो, ऐसे मित्र को त्याग देना चाहिए, क्योकि वह भीतर से विष और ऊपर से दूध भरे हुए घड़े के समान है।' "

इसके बाद कौए ने लम्बी साँस लेकर कहा – "अरे धूर्त! तुझ पापी ने यह क्या किया? क्योकि – 'मीठी बाते करनेवाले, झूठी सेवा से वशीभूत हो जानेवाले, आशावादी तथा श्रद्धालु लोगो को ठग लेना कौन-सी बड़ी बात है?' 'हे माता पृथ्वी! उपकारी, विश्वासी और शुद्धात्मा व्यक्ति के साथ जो दगाबाजी

करता है, ऐसे झूठे लोगो को तुम कैसे धारण करती हो?'

दुर्जनेन समं वैरं प्रीतिं चापि न कारयेत् ।
उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम् ।।

– 'दुर्जन मनुष्य के साथ न तो शत्रुता और न ही प्रेम करना चाहिए, क्योंकि अंगारा यदि जलता हुआ हो तो हाथ को जला डालता है और ठण्डा हो तो काला कर देता है।'

"या फिर दुर्जनो का स्वभाव ही ऐसा होता है –

प्राक् पादयोः पतति खादति पृष्ठमांसं
कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रम् ।
छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशङ्कः
सर्वं खलस्य चरितं मशकं करोति ।।

– 'दुष्ट के सारे लक्षण मच्छर मे मिल जाते हैं। पहले तो वह पैरों पर गिरता है, फिर पीठ का मांस खाता है और कानो के पास विचित्र ढंग से मीठी गुंजार करता है और छिद्र देखकर निःशङ्क भाव से भीतर घुस जाता है।'

दुर्जनः प्रियवादी च नैतद्विश्वासकारणम् ।
मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदि हालाहलं विषम् ।।

– 'दुर्जन होकर भी यदि मीठी बातें करता है, तो इस कारण उस पर विश्वास नही कर लेना चाहिए; क्योंकि उसकी जीभ पर तो शहद रहता है, पर हृदय मे हलाहल विष भरा रहता है।'''

सबेरे खेत का मालिक हाथ मे लाठी लिये खेत की ओर रहा था, तभी कौए ने उसे देखकर कहा – "मित्र मृग! तुम हवा से पेट फुलाकर और हाथ-पॉव ढीला करके मुर्दे की तरह पड़े रहो और मै अपनी चोच से तुम्हारी ऑखों को कुरेदता हूँ। जब मै आवाज लगाऊँ, तो तुम झटपट उठकर भाग जाना।" हिरन उसके कहे अनुसार चुपचाप पड़ा रहा। फिर खेत के मालिक ने हर्षोत्फुल्ल नेत्रों के साथ हिरन को उस दशा में देखकर कहा – "ओह! तो तुम स्वयं ही मर गये।" यह कहकर उसने बन्धनो को खोल दिया और फैला हुआ जाल समेटने लगा। तभी कौए की आवाज सुनकर हिरन फुर्ती से भाग खड़ा हुआ और उसकी ओर संधान करके फेंके गये डण्डे की चोट से सियार मर गया। कहा भी है –

त्रिभिवर्षैः त्रिभिमासैः त्रिभिः पक्षैः त्रिभिर्दिनैः।
अत्युत्कटैः पाप-पुण्यैरिहैव फलमश्नुते ।।

– 'तीव्र पाप या पुण्य का फल व्यक्ति को तीन वर्ष, तीन महीने, तीन पक्ष या तीन दिन में ही भोगने को मिलता है।'

"इसीलिए मै कहता हूँ कि 'भक्ष्य और भक्षक की मित्रता विपत्ति का कारण हो जाती है' आदि।"

कौए ने फिर कहा – "हे पुण्यात्मन! यदि मै आपको खा जाऊँ, तो भी मेरे लिये पर्याप्त आहार नही होगा। मैं तो गजा चित्रग्रीव की तरह तुम्हारे जीने में ही सुख का अनुभव करूँगा। पुण्यात्मा पशु-पक्षियो का भी विश्वास किया जाता है, क्योंकि शीलवान सज्जनों का स्वभाव कभी बदलता नही। जैसे घास की ऑच से समुद्र नहीं खौलता, वैसे ही साधु पुरुष को तंग करने पर भी उनका मन विक्षिप्त नही होता।"

चूहा हिरण्यक बोला, "तुम चंचल हो और चंचल प्राणी के साथ कभी प्रेम नही करना चाहिये। कहा भी है – 'बिडाल, भैंसा, भेड़ा, कौआ और नीच व्यक्ति मे विश्वास करने से ये हानि करने मे सफल हो जाते हैं। अतः इन पर विश्वास न करें। और फिर आप हमारी जाति के शत्रुपक्ष के है। कहा भी है – 'शत्रु कितनी भी दृढ़ सन्धि करने को उद्यत हो, फिर भी उसके साथ सन्धि नही करना चाहिए, क्योकि पानी कितना भी खौलता हुआ हो, फिर भी वह आग को बुझा देता है।'

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालंकृतोऽपिसन् ।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः ।।

– 'विद्या से अलंकृत भी दुर्जन मनुष्य से दूर ही रहना चाहिये। क्या मणि से विभूषित सर्प भयानक नही होता?'

'जो नहीं हो सकता, वह नहीं होगा और जो हो सकता है, वह होगा ही। जैसे बैलगाड़ी पानी में नही चल सकती और न नाव भूमि पर चल सकती है।' और भी – 'बड़े-से-बड़े उद्देश्य के लिये भी जो व्यक्ति शत्रु और स्त्री पर विश्वास करता है, तो समझ लो कि अब उसके जीवन का अन्त है।' "

कौए लघुपतनक ने कहा – "मैंने सब सुन लिया, तो भी मेरा संकल्प है कि मै तुम्हारे साथ मित्रता जरूर करूँगा। यदि ऐसा न हुआ, तो मैं उपवास करके तुम्हारे द्वार पर ही प्राण दे दूँगा। कहा भी है – 'दुर्जन लेग मिट्टी के घड़े के समान सहज में ही फूट जानेवाले और बड़ी कठिनाई से जुड़नेवाले होते हैं। परन्तु सज्जन लोग स्वर्ण-कलश की तरह कठिनाई से टूटते और आसानी से जुड़ जानेवाले होते है।' और फिर – 'गलाये जाने पर सब प्रकार के धातुओ का मेल होता है, दाने-पानी के निमित्त पशु-पक्षियों के बीच, भय एवं लोभ से मूर्खो के बीच और दर्शन मात्र से सज्जनों के बीच प्रेम हो जाता है।' और –

नारिकेल-समाकारा दृश्यन्ते हि सुहृज्जनाः।
अन्ये बदरिकाऽऽकारा बहिरेव मनोहराः ।।

– 'सज्जन लोग नारियल के समान बाहर से कठोर, पर भीतर से सरस होते हैं और दुर्जन लोग बेर के फल की भॉति बाहर से सुन्दर, पर हृदय के कठोर होते हैं।'

'किसी कारणवश सज्जनों का स्नेह टूट जाय, तो भी वे हृदय से रुष्ट नही होते। क्योंकि कमलनाल के टूट जाने पर भी उसके तन्तु नही टूटते।' और भी – 'हृदय की निर्मलता, त्याग, बल, सुख-दुख मे समानता, उदारता, प्रेम और सच्चाई, ये मित्र के स्वाभाविक गुण हैं।' आपको छाड़ इन गुणों से युक्त मुझे दूसरा कौन मित्र मिलेगा?"

ये बाते सुनकर हिरण्यक चूहा अपने बिल से बाहर निकला

और कहने लगा – "आपकी इन अमृतमयी बातों से मैं गद्गद हो गया। कहा भी है – 'गर्मी से त्रस्त हुए मनुष्य को खूब ठण्डे जल का स्नान, मोतियों की माला और शरीर भर में लेप किया हुआ श्वेत चन्दन उतना सुख नहीं देता, जितना कि सुन्दर नीतिमय युक्तियों के स्पष्ट अर्थों से युक्त वशीकरण मंत्र के समान सज्जनों का वचन चित्त को प्रसन्न करता है।' और – 'भेद खोलना, माँगना, निष्ठुरता, चित्त की चंचलता, क्रोध, झूठ बोलना और जूआ खेलना – ये मित्र के दोष हैं।' तुम्हारी बातों से लगता है कि तुममें इनमें से कोई भी दोष नहीं है। क्योंकि –

पटुत्वं सत्यवादित्वं कथायोगेन बुध्यते ।
अस्तब्धत्वमचापल्यं प्रत्यक्षेणवगम्यते ।।

– 'निपुणता और सच्चाई, ये तो बातचीत से ज्ञात हो जाती है, परन्तु गम्भीरता तथा चांचल्यहीनता तो प्रत्यक्ष रूप से ही जाने जाते हैं।'

और भी – 'जिनकी अन्तरात्मा निर्मल होती है, उनकी मित्रता अन्य ही प्रकार की होती है। किन्तु जिनके मन में मैल जमा हुआ है, उनकी बातें भिन्न प्रकार की होती हैं।'

मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कार्यमन्यद् दुरात्मनाम्।
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ।।

– 'दुर्जन पुरुष के मन में कुछ रहता है, वाणी में कुछ और रहता है, कार्यरूप में कुछ और ही दीखता है। किन्तु जिनकी आत्मा महान् होती है, उनके मन, वचन तथा कर्म में एक ही बात देखी जाती है।' "

"ठीक है, जैसी तुम्हारी इच्छा, वैसा ही हो" – ऐसा कहकर हिरण्यक (चूहे) ने लघुपतनक (कौए) के साथ मित्रता की और अनोखी खाद्य-सामग्री से सन्तुष्ट करके अपने बिल में घुस गया। कौआ भी उड़कर अपने स्थान को चला गया। तब से परस्पर खिलाने-पिलाने, कुशल-प्रश्न करने और खुले हृदय से बातें करते हुए उन लोगों का समय कटने लगा।

एक दिन लघुपतनक ने हिरण्यक से कहा – "इस स्थान में भोजन की बड़ी कठिनाई है। अत: हम इसे छोड़कर दूसरी जगह जाना चाहते हैं।" हिरण्यक ने पूछा – "मित्र! कहाँ जाओगे? क्योंकि कहा है – 'बुद्धिमान मनुष्य एक पैर से चलता है और दूसरे से टिकता है। इसलिये जब तक दूसरी जगह न देख ले, तब तक पुरानी जगह न छोड़े।' "

लघुपतनक कौए ने कहा – "अच्छी तरह देखी हुई जगह है।" चूहे ने पूछा – "कौन-सी?" कौआ बोला – "दण्डक वन में कर्पूरगौर नामक तालाब है। वहाँ मेरा बड़ा पुराना प्रिय मित्र मन्थर नामक धर्मात्मा कछुआ रहता है। देखो –

परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम् ।
धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित्तु महात्मनः ।।

– 'दूसरों को उपदेश देने में विद्वत्ता दिखाना सबके लिए आसान बात है, परन्तु बिरले ही ऐसे महात्मा हैं, जो स्वयं अपने धर्म का पालन करते हुए देखने मे आते हैं।' वह तरह तरह के भोजन से हमारा सत्कार करेगा।"

हिरण्यक बोला – "तो मैं ही यहाँ रहकर क्या करूँगा?" क्योंकि –

यस्मिन्देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवः ।
न च विद्यागमः कश्चित्तं देशं परिवर्जयेत् ।।

– 'जिस देश में न सम्मान, न जीविका, न कोई बन्धुजन और न विद्या की प्राप्ति हो, वह देश त्याग देना चाहिये।'

'जीविका, भय, लज्जा, उदारता और त्यागशीलता, जहाँ ये पाँच बातें न हों, वहाँ नहीं रहना चाहिये।'

तत्र मित्र न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम् ।
ऋणदाता च वैद्यश्च श्रोत्रियः सजला नदी ।।

– 'हे मित्र! जहाँ ये चार न हों, वहाँ नहीं रहना चाहिए – ऋण देनेवाला महाजन, वैद्य, वेदपाठी ब्राह्मण और जलपूरित नदी।

"अत: मुझे भी वही ले चलो।" इसके बाद कौआ उस मित्र के साथ तरह तरह की बातें करता हुआ बड़े आनन्दपूर्वक उस सरोवर के पास गया। मन्थर ने दूर से ही लघुपतनक तथा हिरण्यक को देखकर दोनों का स्वागत-सत्कार किया। क्योकि – 'बालक, युवा, वृद्ध – कोई भी अपने घर आये, तो उसका सत्कार करना चाहिये, क्योंकि अतिथि सबका पूज्य है।'

लघुपतनक ने कहा – "मित्र मन्थर! इनका विशेष सत्कार कीजिए, क्योकि ये पुण्यात्माओं में अग्रणी, दया के समुद्र और चूहों के राजा हिरण्यक हैं। यदि भगवान शेष अपनी दो हजार जिह्वाओ से इनके गुणों का बखान करें, तो वे भी शायद ही समर्थ होंगे।" इसके बाद उसने कपोतराज चित्रग्रीव की कथा सुनायी। मन्थर ने बड़े आदरपूर्वक हिरण्यक का सत्कार करके कहा – "मित्र! आप इस निर्जन वन मे अपने आने का कारण बताइए।" हिरण्यक बोला – "कहता हूँ, सुनिये –

❖ (क्रमशः) ❖

श्री स्वामी विवेकानन्द जी

रामनारायण मिश्र

(पं. रामनारायण मिश्र काशी के नागरी प्रचारणी सभा के संस्थापकों में से एक थे । ४ जुलाई १९०२ ई. के दिन स्वामी विवेकानन्द जी के देहात्याग के बाद उन्होने 'सरस्वती' मासिक के लिए एक श्रद्धांजलि लेख लिखा, जो उसके सितम्बर, १९०२ अंक मे मुद्रित हुआ । इसमें स्वामीजी के काशी-प्रवास की भी झलक मिल जाती है । ऐतिहासिक महत्त्व के कारण ही हम इसका पुनर्मुद्रण कर रहे है । इसमे सहज भाव से ही कुछ तथ्यगत भूले आ गयी है । उस काल की हिन्दी के निदर्शन-रूप हमने इसमे प्रयुक्त शब्दो आदि को यथावत् रहने दिया है । – सं.)

संसार में सर्वदा ईश्वर के कुछ ऐसे प्यारे पुत्र हुआ करते हैं जो अपने समय की आवश्यकताओ को निहार कर देशहित ही को अपना कर्तव्य समझते हैं। "समय की आवश्यकताएं" तो अनेक हुआ करती हैं, पर एक सच्चे कार्यदक्ष पुरुष का अपने जीवन के आरम्भ में यह कर्तव्य होता है कि वह अपनी सामर्थ्य और अपनी शक्ति को तौल कर उसको उसी ओर लगाता है कि जिधर वह कृतकार्य हो। किसी महापुरुष की जीवनी पर आलोचना करते हुए इतिहासवेत्ता को इस सिद्धान्त पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए । बहुधा लोगों को यह कहते सुनते हैं कि हां! अमुक पुरुष में गुण तो बहुत थे और अमुक अमुक कार्य उसने अच्छे किए, पर उसको चाहिए था कि अमुक सभा वा समाज के उद्देश्यों से भी कुछ अनुराग प्रकट करता। प्रत्येक पुरुष में एक प्रकार की विशेष शक्ति हुआ करती है और इसीके पहिचानने और उसको अपने कर्तव्यों में प्रयोग करने ही को किसी पुरुष के जीवन की सफलता कहते हैं। जो पुरुष अपनी योग्यता को जान कर और उचित अवसर पड़ने पर, उसको देश की सेवा में लगा देता है, वही पुरुष संसार में आदर्श होकर अमर हो जाता है। परन्तु जो कुछ योग्यता हम अपने में पावें उसको दिखाने में स्वार्थ, अहङ्कार इत्यादि का लेश भी न होना चाहिए और यही सच्चे देशहितैषी की कसौटी है। यदि हम में वक्तृता देने की उत्तम शक्ति है तो हम उसको व्यर्थ विवाद अथवा शास्त्रार्थ में इस हेतु न नष्ट करें कि हमारे विरोधी अथवा श्रोतागण हमारी विद्या बुद्धि से चकित हो जाय, अथवा इस शक्ति से हमारा उदर पूर्ण हो। जिस सभा अथवा समाज का हम बीड़ा उठायें वह भले लोगों में चाहे बदनाम ही क्यों न हो जाय, पर हम अपनी वक्तृताशक्ति से अपना पेट तो भर लें। इस उद्देश्य से काम करना न केवल नीचता है, परन्तु ईश्वर की दी हुई शक्ति को – कि जिसके प्राप्त करने में हमने बहुत परिश्रम नहीं किया – अधर्म में लगाना है। सारांश यह कि हम सब में एक विशेष शारीरिक अथवा मानसिक बल ईश्वर की ओर से मिला हुआ है, उसको ऐसे समय में काम में लाओ कि जब उससे देश की सेवा निःस्वार्थ और निष्कपट होकर की जा सके और महान पुरुष वही है जो ऐसा करता है।

भारतवर्ष में जब अंग्रेजी शिक्षा का प्रारम्भ हुआ और हिन्दू युवकों ने जब अंग्रेजी साहित्य और विज्ञान और इसके साथ ही अंग्रेजों के चरित्र से विज्ञता प्राप्त की, तो उनकी बुद्धि कुछ चक्कर में आ गयी। घर में आकर देखते थे कि सब में देशहितैषिता का अभाव है, विद्या से अनुराग नहीं, स्त्रियों का उचित सम्मान नहीं, धर्म पर लोग विचार नहीं करते, धर्म्म के आचार्यो के चरित्र उनके यजमानों से भी अधम हैं, मुफ़्त के खानेवालों की संख्या अधिक है और उन्हीं का आदर किया जाता है, एक पुरुष कई विवाह कर लेता है और 'कुलीन' कहलाता है। ऐसे समय में इन हिन्दू युवकों ने, जिनके चित्त से अंग्रेजी की ज्योति पुराने अन्धकार को निकाल रही थी, भूल से यह समझा कि यही हिन्दूधर्म है और इसका छोड़ना आत्मोन्नति और देशोन्नति का लक्षण है। ऐसे समय में राजा राममोहन राय पैदा हुए और उन्होंने अपने अलौकिक गुणों को इसी बात के सिद्ध करने में लगाया कि उस समय की वर्तमान सामाजिक अवस्था यथार्थ वैदिक और शास्त्रोक्त हिन्दूधर्म से बिल्कुल भिन्न है और इसी उद्देश्य को, जिसको राजा राममोहन राय ने आरम्भ किया, श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अत्यन्त परिश्रम, बुद्धिमत्ता और देशहितैषिता से पूर्ण किया। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं के चित्त में प्राचीन आर्यग्रन्थों और आर्य सभ्यता में पूर्ण विश्वास हो गया और वे लोग भली भांति जान गए कि धर्म में हमको विदेशियों का अनुकरण करने की कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु इन महात्माओ का विदेशियों के उन झूठे विचारों को दूर करने में कुछ भी असर न हुआ कि जो वे लोग हिन्दूधर्म और सभ्यता के सम्बन्ध में प्रकट करते थे! हिन्दुओं का इसाई होना तो कम हो गया, परन्तु विलायत में जा कर पादड़ियों का हिन्दुस्तान की कल्पित दुर्दशा के चित्रों को दिखाकर रुपया लाना बन्द न हुआ। कोई विद्वान पादड़ी तालाबों की तस्वीरें बाजारों में दिखलाता कि जिनमें मगर अपना मुंह बाहर निकाल कर उन असभ्य हिन्दुओं की ओर देख रहे हैं कि जो किनारे पर खड़े होकर अपनी लड़कियों को उस तालाब में फेंका ही चाहते हैं। कोई सती की दुर्दशा दिखलाता, कोई ग्रहणस्नान करने की मूर्खता का चित्र सामने रख इन असभ्यों में (कोई कोई महाशय यह भी कह देते थे कि हिन्दू नर-मांसभक्षक हैं) इसाई धर्म का प्रचार करने के हेतु दान देने की अपील करता। इसका राजनैतिक परिणाम

यह होने लगा कि जितने अंग्रेज भारत में हमारे शासक होकर आते, वे यह समझ लेते कि हमें असभ्यों पर राज्य करना है और इनसे वैसा ही वर्ताव किया जाय कि जैसा अमेरिका के रेड इण्डियन्स से किया गया था। स्वयं लार्ड जोर्ज हेमिल्टन ने, जो भारत के राजकीय मन्त्री हैं, एक समय में कहा था कि भारतवासी जंगली हैं। हमारे शासकों में ऐसा विचार होना हमारे लिए कैसा हानिकारक है उसके सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं। ऐसी अवस्था में इस बात की आवश्यकता थी कि यूरोप और अमेरिकानिवासियों पर अपने यथार्थ बल अर्थात् धर्म्म को प्रकट करे। इस पर पुस्तकें लिखने से कोई लाभ न था। इसके लिए आवश्यक था कि किसी सुअवसर पर हम में से कोई योग्य पुरुष स्वयं विदेश जाता और हमारे धर्म की यथार्थ मर्यादा हमारे शासकों की जाति पर मनोहर रूप से प्रकट करता। आज हम जिस पुरुष का जीवनचरित्र लिखते हैं, उसने हमारी ऐसी ही अवस्था में हमारा उद्धार किया। हम कृतघ्नो चाहे जो कुछ कहे, पर उनके उपदेशो का जो प्रभाव हुआ है उसको स्वयं विदेशियों ने स्वीकार किया है और अभी थोड़े ही दिन हुए कि उन्ही लोर्ड जार्ज हेमिल्टन ने कूपर्स हिल कोलेज में व्याख्यान देते हुए कहा था कि हिन्दुओं की प्राचीन सभ्यता और हमारी नवीन सभ्यता में समता नहीं हो सकती। हम यह नही कहते कि उक्त लोर्ड महोदय के विचार को स्वामी जी ने सुधारा, पर हमारा तात्पर्य यह है कि एक ऐसे पदाधिकारी का, जो अपने वाक्यो को बहुत समझ सोच कर निकालते हैं, उनके जीवनकाल ही में मत परिवर्तन स्पष्ट जातीय मत परिवर्तन की सूचना देता है।

संक्षिप्त जीवनी

स्वामीजी का जन्म बङ्गाल में हुआ था। संन्यास ग्रहण करने के पूर्व इनका नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। यह जाति के कायस्थ थे। इनके पिता एक वकील के मोहर्रिर थे। पिता ने अपने पुत्र को संस्कृत और अंग्रेज़ी की शिक्षा दी और नरेन्द्रनाथ ने बी. ए. तक पढ़ा। पिता की इच्छा थी कि पुत्र को वकील बनावे, और बालक नरेन्द्रनाथ को संस्कृत और फिलासोफ़ी (दर्शन शास्त्र) पढ़ने की बड़ी अभिलाषा और धर्मो के तत्व को जानने की जिज्ञासा थी। इस समय बङ्गाल में एक महात्मा संन्यासी रहते थे, जिनका नाम परमहंस रामकृष्ण था। इनके उपदेशों और सद्‌गुणो मे ऐसी विद्युत् शक्ति थी कि उस समय के बड़े बड़े विद्वानों ने, 'जो नास्तिक हो गए थे, इनके सत्संग से ईश्वर में विश्वास किया। कहा जाता है कि विख्यात ब्राह्म उपदेशक बाबू केशव चन्द्र सेन भी "हरि बोल" कहने वाले दल के साथ परमहंस जी के प्रभाव से नृत्य करने लग गए थे और उन्होंने मूर्तिपूजा पर अपना मत भी कुछ बदल दिया था। जो कुछ हो, युवक नरेन्द्रनाथ की धर्म-पिपासा उन्हे परमहंस के उपदेशों के स्रोत की ओर ले गई और उन्हे योगी परमहंस से पूरा सन्तोष प्राप्त हुआ। परमहंस जी स्वयम् कहा करते थे कि मेरे शिष्यो में नरेन्द्रनाथ सुहृद और विद्वान होगा और संसार में विख्याति प्राप्त करेगा। नरेन्द्रनाथ उस समय संन्यासी हो गए और स्वामी रामकृष्ण ने इनका नाम विवेकानन्द रक्खा। उसी समय से इन्होंने संस्कृत पढ़ने में और भी परिश्रम करना आरम्भ किया। ये कई वर्ष लों काशी में रहे। हमारे परिचित कई पुरुषो ने विवेकानन्द के विलायत से आने पर हमसे कहा कि वे स्वामी जी को उस समय जानते थे कि जब वे काशी जी में पढ़ते थे और उस समय वे ऐसे दत्तचित्त होकर पढ़ते थे कि बहुत से लोग तो कभी यह भी सन्देह नहीं कर सकते थे कि यह अङ्गरेजी जानते है। निदान स्वामी जी भ्रमण करते हुए और संस्कृत की व्युत्पत्ति बढ़ाते हुए हिमालय के गुप्त और रमणीक स्थानों में पहुंचे और उन्होने वहां योगाभ्यास भी किया।

वेदान्त प्रचार का आरम्भ

इसी समय मे पत्रो में समाचार छपने लगा कि अमेरिकान्तर्गत शिकागो नगर में एक बृहत प्रदर्शनी होगी और उसके साथ ही धर्म की एक महासभा भी होगी, जिसमें पधारने के लिए संसार के सब धर्मों के आचार्य निमन्त्रित किए जायंगे। प्रत्येक धर्म्म के प्रतिनिधि अपने धर्म्म की व्याख्या करेगे जो छप जायगी और जिसपर पाठक गण स्वयम् विचार कर लेंगे। काशी में विख्यात स्वामी भास्करानन्द जी को भी निमन्त्रण आया था, पर नवयुवक विवेकानन्द को जानता ही कौन था कि निमन्त्रण आता। पर देशहितैषिता की आग को लौकिक संकोच और सामाजिक विड़म्बना भी नही बुझा सका। स्वामी विवेकानन्द मन्द्राज पहुंचे और वहां राजा रामनाद से अपनी यह इच्छा प्रकट की कि यदि द्रव्य से सहायता मिले तो मैं भी धर्ममहासभा में जाऊं। उदार राजा ने सब प्रबन्ध कर दिया और हमारे नायक अनजाने और अनजान अमेरिका मे जा पहुंचे। इनको पहुंचने मे कुछ विलम्ब हो गया था और कहा जाता है कि ब्राह्म और थियोसोफिस्ट प्रतिनिधियों ने विवेकानन्द जी के महासभा मे सम्मिलित होने का बड़ा विरोध किया था परन्तु इस कथन की सत्यता वा असत्यता के हम उत्तरदाता नही है। बहुत यत्न करने पर स्वामीजी को भी व्याख्यान देने की आज्ञा मिली।

अमेरिका में स्वामी जी

अमेरिका की धर्ममहासभा का व्याख्यान बहुत सारगर्भित और मनोहर है। उस पर बहुत से पादड़ियो और विदेशी विद्वानो ने यह कहा था कि यदि यही हिन्दू धर्म है जिसकी व्याख्या स्वामीजी ने की, तो इस पर इसाई धर्म का कुछ भी असर नही हो सकता। परन्तु हिन्दुस्तान के बहुत से पादड़ियो और योरोपियन समाचार पत्रो के सम्पादको ने यह लिखा था कि हमलोग नित्य हिन्दूधर्म को देखते है और हम कह सकते

हैं कि सर्वसाधारण का हिन्दूधर्म स्वामी जी के बताए धर्म से उतना ही भिन्न और पृथक है कि जितना कोई और विदेशी मत। इस पर स्वामी जी ने अमेरिका ही में Popular Hindu-ism अर्थात् "सर्वसाधारण का हिन्दूधर्म" पर व्याख्यान दिया। स्वामी जी के व्याख्यान इतने रोचक होते थे कि हजारों अमेरिकन पुरुष और स्त्रियां उनका व्याख्यान सुनने आते, सैकड़ो अखबारों के प्रतिनिधि उनसे मिलने और उनसे धर्मचर्चा करने के हेतु जाते। इस बात को सब लोग स्वीकार करते है कि अमेरिका की धर्ममहासभा मे इनसे अधिक प्रतिष्ठा और आदर किसी धर्म के प्रतिनिधि का नही हुआ।

वहां से चलकर स्वामी जी इङ्गलैण्ड होते हुए, कि जहां उन्होंने बहुत से व्याख्यान दिए, भारतवर्ष को लौट आए। यहां आने पर सीलोन और मन्द्राज मे उनका बड़ा आदर सत्कार हुआ और फिर जहां जहां वे गए, लोग उनका स्वागत करते रहे। अमेरिका और विलायत में उन्होंने बहुत सा रुपया भी जमा किया था। उनकी इच्छा थी कि भारतवर्ष के मुख्य मुख्य स्थानो में मठ स्थापित हों कि जहां से साधु शिक्षा पाकर उपदेशक बनें। उन्होंने अपने जमा किए हुए रुपए से दो एक मठ स्थापित भी किए, परन्तु अपने विचार को वह पूरा न कर सके। भारतवर्ष में आने के कुछ काल पीछे वह रुग्न हो गए और उस समय से बराबर रोगग्रस्त रहे। तिस पर भी सदैव देश की सेवा का ध्यान उनके चित्त पर बँधा रहता। जो कोई उनके दर्शनो को जाता उससे यही चर्चा रहती। एक बार वे पुन: विलायत इस हेतु से गए कि फ्रान्स देश में यदि प्रदर्शनी के साथ धर्ममहासभा होगी, कि जिसके होने की बड़ी सम्भावना थी, तो वहां हिन्दूधर्म का गौरव फ्रान्सीसीं भाषा मे वहां के लोगो पर प्रकट करे। उन्होने फ्रेञ्च भाषा में भी अच्छी उन्नति कर ली थी।

विवेकानन्द और थियोसोफ़िस्ट

हिन्दी पढ़नेवाले "थियोसोफ़ी" से शायद अनभिज्ञ हों, पर वे इस सभा की वर्तमान नायिका एनी बेसेन्ट के नाम से अवश्य परिचित होंगे। इस सभा के संस्थापक और सभापति कर्नल आल्कट हैं। कहते हैं कि स्वामी विवेकानन्द अमेरिका जाने के पहिले मन्द्राज में कर्नल आल्कट से, जिनका जन्मस्थान अमेरिका है, मिलने गए और उनसे उनके उत्साही मित्रो के नाम कुछ पत्र मांगे। परन्तु कर्नल महोदय ने इनसे थियोसोफ़िस्ट हो जाने का अनुरोध किया। स्वामीजी ने कहा कि मुझे बहुत सी बातो पर सन्देह है, मै थियोसोफ़िस्ट न हूंगा; जिसपर कर्नल महोदय ने क्रुद्ध होकर स्वामी जी से चले जाने को कहा। इस बात को स्वामी जी ने स्वयं मन्द्राज की स्पीच में कहा है। स्वांमी जी का मतभेद थियोसोफ़िकल सोसाइटी से "महात्माओं के अस्तित्व" पर ही विशेष था। थियोसोफ़िकल सोसाइटी के अधिकांश मेम्बरों का विश्वास है कि हिमालय पर्वत के किसी दुर्गम स्थान पर महात्मागण रहते हैं जो सोसायटी पर अति कृपा रखते है। एक का नाम "कुतुहूमी लाल सिंह" है। यह विशेष विशेष लोगो से पत्र व्यवहार भी रखते हैं और कभी कभी सूक्ष्म रूप से अमेरिका और इङ्गलैण्ड जाकर दोनों को दर्शन भी दे आते हैं। स्वयं कर्नल आल्कट से विलायत और अमेरिका में महात्मागण कभी पगड़ी अङ्गरखा पहिन कर और कभी किसी दूसरे वेष मे मिल जाते है। किसी किसी थियोसोफ़िस्ट का तो यहां तक दृढ़ विश्वास है कि वे लोग जब कोई शुभकार्य आरम्भ करेंगे, या किसी अपौरुषेय शक्ति का आवाहन करेंगे तो "महात्माओं" (Masters) का आशीर्वाद पहिले प्राप्त कर लेंगे। जब तक मेडम ब्लैवट्स्की जीवित थी, तब तक महात्माओ की सहायता से कर्नल साहेब और उक्त लेडी साहिबा विचित्र विचित्र बाते किया करते थे – यथा रोगियो को चङ्गा करना, टेबुल से पत्र व्यवहार करना इत्यादि। सोसाइटी के लोगों में किसी किसी का यह भी विश्वास है कि हिन्दुओं के वर्तमान वेद असली वेद नही हैं। असली वेद महात्माओं के पास हैं जो उचित समय पर उनको प्रकट करेंगे। स्वामी विवेकानन्द का ऐसे महात्माओं की स्थिति में विश्वास नहीं था। वे मानते थे कि हिमालय पर योगीजन निवास करते है। अमेरिका से जो उत्तर उन्होंने मन्द्राज के हिन्दुओ के प्रशंसापत्र पर भेजा था, उसमें उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि हिमालय पर योगीजन रहते हैं। वे परोपकारी, पण्डित और बहुत ही उच्चश्रेणी के मनुष्य हैं; परन्तु उन्हें महात्मा कुतुहूमी लाल सिंह का विचित्र वृत्तान्त एक रोचक उपन्यास, जो भोले भाले हिन्दुओं के लिए रचा गया हो, मालूम होता था। जो हो परन्तु हमारा स्वयम् यह विश्वास है कि उक्त सोसायटी ने संस्कृत के उद्धार करने और हिन्दुओ को इसाई होने से रोकने में भारतवर्ष की सच्ची सेवा की है। परन्तु इसके साथही हिन्दुओं के मिथ्या विश्वासों को वैज्ञानिक रूप देकर हिन्दुओं की सच्ची उन्नति को भी बहुत कुछ रोका है! किम्बदन्ती है कि हिन्दू कालेज की ओर से स्वामी जी को एक पत्र भेजा गया था कि वे हिन्दू कालेज के लिए चन्दा एकट्ठा करने मे सहायता दें, परन्तु उन्होंने इसे इस कारण स्वीकार नहीं किया कि हिन्दू कालेज में थियोसोफ़ी की शिक्षा होगी। हमें इस कथा में केवल इसी लिए विश्वास होता है कि हिन्दू कालेज के हेतु काम करनेवाले लोगों में अच्छे वक्तागण केवल योरोपियन ही हैं। लोगों को यह कहते सुना है कि कालेज के चन्दे की अपील केवल मिसेज़ बेसन्ट ही करती हैं। दूसरे हिन्दू मेम्बर (जिनका यह मुख्य कर्तव्य है) चुप चाप बैठे रहते है। शायद इस दोष को दूर करने के हेतु स्वामी विवेकानन्द से प्रार्थना की गई हो।

विवेकानन्द का मत

विवेकानन्द का मत वेदान्त था। अपने मत की व्याख्या करते हुए वे नवीन विज्ञान शास्त्रों से बड़ी सहायता लेते थे, और यही उनके यश का कारण हुआ। आज कल के बहुत से उपदेशक जिन्होंने डारविन, हक्सले, या टिण्डल की एक भी पुस्तक नहीं देखी, व्याख्यान का आरम्भ इन्हीं पर तालियों की बौछार से करते हैं। जिन जिन विषयों पर स्वामी जी को विश्वास था उनके मण्डन करने में वे अपने विश्वास को विज्ञानशास्त्र के अटल सिद्धान्तों के अनुकूल दिखलाने का प्रयत्न करते और उसमें सफलीभूत भी हुए हैं। स्वामी विवेकानन्द समाजसंशोधक भी थे। खाने पीने में वे धर्म नहीं समझते थे। आज कल के दिखौआ आड़म्बरों को वह सोने की मैल समझते थे। मूर्ति पूजा में उन्हें विश्वास था, परन्तु आज कल के पण्डों और धर्माचार्यो का वे सुधार चाहते थे। विदेशयात्रा के वे पक्षपाती थे और इसी कारण वे हिन्दुओं में मांस का प्रचार करते थे (हम इसको स्वामी जी की भूल समझते हैं) और स्वयं भी मांस खाते थे। परन्तु ऐसा उन्होंने डाक्टरों के अनुरोध से किया; नहीं तो उनका जीना कठिन था। योगियों और आत्मिक उन्नति करनेवालों को वे मांस का निषेध करते थे।

स्वामी विवेकानन्द देवनागरी अक्षरों के बड़े प्रेमी थे। वे अपने बङ्गाली मित्रों से कहा करते थे कि बङ्गला भाषा भी देवनागरी अक्षरों में लिखनी चाहिए। उन्होंने स्वयम् कई पत्र ऐसे ही लिखे थे। हिन्दी वह बहुत अच्छी तरह से बोलते थे।

हमारे पाठकों पर शायद विदित है कि जापान में भी इस वर्ष धर्मसभा होगी, जिसमें हिन्दू धर्म के प्रतिनिधियों के हेतु जापानी लोगों ने जहाज और खाने पीने का विशेष प्रबन्ध कर दिया है। इस महासभा में स्वामी जी को भी निमन्त्रण आया था, और उन्होंने जाना स्वीकार भी कर लिया था। परन्तु ईश्वर को विवेकानन्द को पाश्चात्य नगरों के ही उपदेशक होने का गौरव देना था, और यह यश उन्हें उचित समय में और उचित रूप से मिला। उनके दो शिष्य इस समय वेदान्त प्रचार मे बहुत दत्तचित्त हैं – स्वामी ब्रह्मानन्द और स्वामी सारदानन्द। कई एक मेम और साहब भी इनके अनुगामी हैं। गत वर्ष जब कलकत्ते में प्लेग और अकाल पड़ा था, तो स्वामी विवेकानन्द और उनके उक्त शिष्यों ने चन्दा जमा करके स्थान स्थान पर चिकित्सालय और अनाथालय खोले थे। सहस्रों रोगियों और कङ्गालों की सेवा ये लोग स्वयम् प्रेमपूर्वक किया करते थे। धन्य हैं ऐसे लोग!

स्वामी जी की मृत्यु

ऐसे पुरुष का मनुष्य की पूरी अवधि तक जीते रहना देश और संसार के लिए बड़े उपकार की बात थी। परन्तु स्वामी जी का देहान्त ४ जुलाई १९०२ को ३९ वर्ष की अवस्था मे हो गया। उनकी मृत्यु योगियो की सी हुई। उन्हें अपनी मृत्यु का आभास पूर्वही से हो गया था, उन्होंने बातचीत करते हुए शरीर त्यागा और वह शरीर जिसकी मधुर वाणी सुनने और जिसकी सुन्दर रूप देखने को अमेरिका के निवासी सभाओं में एकत्रित होते, आज मौन हो गया। भारतवासियो, अभी तुम्हारे भाग्य मन्द है। भारत ने इसी शताब्दी में विवेकानन्द से भी बढ़े हुए लोग उत्पन्न किए, परन्तु वे सब ऐसे ही समय में हमसे छीन लिए गए कि जब द्वार खट-खटाने से सोनेवालो की नीद ही खुली थी। मन्द्राज प्रदेश में स्वामी के मरने पर एक सभा शोक प्रकाश करने के हेतु हुई थी, और इसमे लोगो ने एक मठ स्थापित करने के लिए चन्दा भी जमा किया है, जिससे वेदान्त का प्रचार विदेश में होता रहे। सनातन धर्मावलम्बियो, जो आपका कर्तव्य है उसको या तो विदेशी लोग कर रहे हैं या ऐसे लोग जिन्हें आप गाली देते हैं। तनिक विचारिए कि आपने अब तक क्या किया! ❑❑❑

चल प्रियतम की ओर

डा. भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

पकड़ प्रेम की डोर, अरे मन! तू चल रे!
चल प्रियतम की ओर, अरे मन! तू चल रे!!
इधर-उधर भटकता न जाने कहाँ-कहाँ?
ढूँढ़ रहा सुख-सिन्धु अरे, क्यों यहाँ-वहाँ?
जहाँ ज्ञान का भोर, वही पर तू चल रे!
चल प्रियतम की ओर, अरे मन! तू चल रे!!
क्यों रहता दिन-रात घोर अभिमान भरा?
प्रियतम का पथ भली-भाँति पहचान जरा।
मद के छूता छोर, नहीं मन तू चल रे!
चल प्रियतम की ओर, अरे मन तू चल रे!!
छोड़ असत् को सत् को, तु उरहार बना।
खिले सुमन-सा मन जीवन समुदार बना॥
लेता हर्ष हिलोर अरे मन तू चल रे!
चल प्रियतम की ओर अरे मन तू चल रे !!

गीता की शक्ति और मोहकता (५)

स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज (परमाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ तथा मिशन)

(अद्वैत आश्रम, मायावती से प्रकाशित होनेवाली प्रस्तुत लेखमाला के दो भाग हैं – 'गीता-अध्ययन की भूमिका' जीवन के विभिन्न प्रकार के कार्यों मे व्यस्त जगत् के विचारशील लोगो का गीता से परिचय कराने हेतु है और दूसरा भाग 'गीता की शक्ति तथा मोहकता' इस महान् ग्रन्थ पर दिये गये एक उद्‌बोधक व्याख्यान का अनुलिखन है। इन अंग्रेजी व्याख्यानो का हिन्दी अनुवाद हम क्रमश: प्रकाशित कर रहे है। – सं.)

स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में श्रीरामकृष्ण-अवतार

अवतार किस प्रकार समाज में शक्तियों के अनुपात को बदल देते हैं? शंकराचार्य अपने भाष्य मे इसका उत्तर देते हैं, परन्तु फिलहाल मैं आपके समक्ष स्वामी विवेकानन्द की उन बातों को रखना चाहता हूँ, जो उन्होने समाज में बुराइयाँ फैल जाने पर उन्हें ठीक करने को आनेवाले अवतारों की महत्ता के विषय में कहा है। उस समय वे अमेरिका के न्युयार्क नगर में **'मेरे गुरुदेव'** जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर बोल रहे थे। अमेरिका तथा यूरोप में अपने चार वर्षीय दौरे के दौरान वे कभी श्रीरामकृष्ण पर नहीं बोले, केवल वेदान्त पर ही बोलते रहे। जब लोगों ने सुना कि उनके श्रीरामकृष्ण नामक एक गुरु भी थे और वे एक अद्‌भुत व्यक्तित्व से सम्पन्न थे, तो लोगों ने हठ किया कि वे अपने गुरुदेव के बारे में भी कुछ बोलें। अत: उन्होंने न्युयार्क तथा लन्दन में **'मेरे गुरुदेव'** शीर्षक के साथ यही एक व्याख्यान दिया। उस व्याख्यान के प्रारम्भ में शंकराचार्य की यह उक्ति है – जब परिस्थितियाँ नियंत्रण से बाहर चली जाती हैं और समाज भ्रष्ट हो जाता है, तब नैतिक मूल्यों (आदर्शो) की स्थापना के लिए एक महान् शक्ति आविर्भूत होती है। इसी प्रकार वे अपना व्याख्यान शुरू करते हैं। यह बड़ी सुन्दर अंग्रेजी में एक अद्‌भुत व्याख्यान है और इसमे एक महान् आचार्य का अति ललित चित्रण है। घर मे एक छात्र के रूप में तथा रामकृष्ण संघ में एक ब्रह्मचारी के रूप मे मैंने इस व्यांख्यान को लगभग पच्चीस बार पढ़ा होगा। यह प्रत्येक दृष्टि से इतना ही अद्‌भुत है। वे इसे आरम्भ करते हैं (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ७, पृ. २३५-३७) –

"भगवान श्रीकृष्ण ने भगवद्‌गीता में कहा है – 'जब जब धर्म का ह्रास होता है तथा अधर्म की वृद्धि होती है, तब तब मनुष्य जाति के उद्धार के निमित्त मैं अवतार लेता हूँ।' जब कभी हमारे इस संसार में विकास या नवीन सामंजस्य की जरूरत होती है, तब तब एक शक्ति-तरंग आती है और मनुष्य के आध्यात्मिक तथा भौतिक क्षेत्रों में विचरण करने के कारण इन दोनों क्षेत्रों में ही इस तरंग का प्रभाव पड़ता है। एक ओर भौतिक क्षेत्र में आधुनिक समय में प्रधानत: यूरोप ने ही सामंजस्य स्थापित किया है और दूसरी ओर आध्यात्मिक क्षेत्र में सारे संसार के इतिहास में एशिया ही समन्वय का मुख्य आधार रहा है। आज आध्यात्मिक क्षेत्र में सामंजस्य की पुन: जरूरत है – आज, जबकि भौतिकवाद अपनी शक्ति तथा कीर्ति के शिखर पर है तथा जब मनुष्य जड़ वस्तुओं पर अधिकाधिक अवलम्बित रहने से अपनी दैवी प्रकृति को भूलकर केवल धनोपार्जन का एक यंत्र मात्र बनता जा रहा है, समायोजन की बड़ी जरूरत है। ऐसे अवसर के लिए देववाणी हो चुकी है और ऐसी दैवी शक्ति का आगमन हो रहा है, जो बढ़ते हुए भौतिकवाद के मेघों को तितर-बितर कर देगी। इस शक्ति का खेल आरम्भ हो चुका है और वह शक्ति ही मानव-जाति में उसके वास्तविक स्वरूप की स्मृति का संचार एक बार फिर कर देगी; और जहाँ से यह शक्ति सभी दिशाओं में प्रसारित होगी, वह केन्द्र एक बार फिर एशिया ही होगा।

"हमारा यह संसार श्रम-विभाजन की प्रणाली पर टिका है। यह कहना व्यर्थ है कि एक ही मनुष्य प्रत्येक वस्तु का अधिकारी होगा, परन्तु फिर भी एक बच्चे के समान हम कैसे अनजान हैं! अज्ञानवश एक बच्चा यही सोचता है कि समस्त संसार में वांछनीय वस्तु केवल उसकी गुड़िया ही है। इसी प्रकार एक जाति जो भौतिक शक्ति में श्रेष्ठ है, सोचती है कि इस संसार में यदि कोई वस्तु अमूल्य एवं प्राप्त करने योग्य है, तो वह भौतिक शक्ति ही है तथा उन्नति एवं सभ्यता का अर्थ इसके अतिरिक्त दूसरा है ही नहीं; और यदि कुछ जातियाँ ऐसी हैं, जो इसकी परवाह नहीं करतीं तथा जिनके पास यह शक्ति नहीं है, तो वे टिकने योग्य नहीं है – उनका सारा अस्तित्व ही सर्वथा निरर्थक है।

"परन्तु दूसरी ओर एक राष्ट्र के विचार हो सकते है कि केवल भौतिक सभ्यता ही नितान्त निरर्थक है और ऐसी वाणी प्राच्य देश से ही उठी, जिसने एक समय सारे संसार को यह बतलाया था कि किसी मनुष्य के पास यदि संसार की सारी सम्पत्ति है, परन्तु आध्यात्मिक शक्ति नहीं, तो वह सब किस काम का? यही भाव प्राच्य का है और इसके विपरीत दूसरा पाश्चात्य का।

"ये दोनों ही भाव महत्त्वपूर्ण तथा गौरवशाली हैं। वर्तमान सामंजस्य इन दोनों आदर्शों का समन्वय तथा मिश्रण स्वरूप होगा। पाश्चात्य के निकट इन्द्रियग्राह्य जगत् जितना सत्य है, उतना ही प्राच्य के लिए आध्यात्मिक जगत् है। आध्यात्मिक राज्य में प्राच्य जो कुछ चाहता है या जिसकी वह आशा करता है तथा जो कुछ जीवन को सत्य बनाता है – वह सब उसे इसमें मिल जाता है। पाश्चात्य को प्राच्य स्वप्नसृष्टि में विचरण करनेवाला दिखता है तथा प्राच्य भी पाश्चात्य को वैसा ही देखता है और सोचता है कि यह तो केवल नाशवान खिलौने से ही खेल रहा है और यह विचार कर हँसता है कि बड़े-बूढ़े पुरुष तथा स्त्रियाँ एक मुट्ठी भर ऐहिक वस्तु के सम्बन्ध में, जिसको कि आगे-पीछे उन्हें छोड़ना ही पड़ेगा, कितना तिल का ताड़ बना रहे हैं। तात्पर्य यह कि दोनों एक-दूसरे को स्वप्नसृष्टि में विचरण करनेवाले समझते हैं।

"परन्तु प्राच्य आदर्श मानव-जाति की उन्नति के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना की पाश्चात्य आदर्श – और मैं सोचता हूँ कि शायद अधिक ही। मशीनों ने मनुष्य-जाति को कभी सुखी नही बनाया और न बना सकेगी। जो हमें इस बात का विश्वास दिलाने का यत्न कर रहा है, वह यही कहेगा कि सुख मशीनों में ही है, परन्तु है यह सदा मन में ही। केवल वही मनुष्य जो अपने मन का स्वामी है, सुखी हो सकता है – दूसरा नहीं। और आखिर यह मशीन की शक्ति है ही क्या? यदि कोई मनुष्य बिजली के तार द्वारा विद्युत् प्रवाह (electric current) भेज सकता है, तो उसे हम एक बड़ा तथा बुद्धिमान मनुष्य क्यों कहें? क्या प्रकृति उससे कई लाख गुना कार्य प्रत्येक क्षण नहीं करती है? अत: हम प्रकृति के ही चरणों पर गिरकर उसकी पूजा क्यों न करें? यदि तुम्हारी शक्ति समस्त विश्व भर में फैल गयी तथा यदि तुमने विश्व के प्रत्येक परमाणु को वश में कर भी लिया तो क्या हुआ? इससे तो तुम सुखी नहीं हो सकते। तुम सुखी तभी हो सकते हो, जब तुम स्वयं को जीत लो। यह सत्य है कि मनुष्य का जन्म प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिए ही हुआ है, परन्तु प्रकृति शब्द से पाश्चात्य जाति केवल भौतिक अथवा बाह्य प्रकृति ही समझती है। यह सत्य है कि पहाड़ों, समुद्रों, नदियो तथा अपनी नाना प्रकार की अनन्त शक्तियों द्वारा समन्वित यह बाह्य प्रकृति अत्यन्त महान् है, परन्तु फिर भी मनुष्य की अन्त:प्रकृति इससे भी महत्तर है – यह सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्रादि से भी उच्च है, हमारी इस पृथ्वी से – समग्र जड़ जगत् से भी श्रेष्ठ है और हमारे इन छोटे-छोटे जीवनो से भी अतीत है तथा यह हमारी गवेषणा के लिए एक विशिष्ट क्षेत्र है। जिस तरह पाश्चात्य जाति ने बहिर्जगत् की गवेषणा में श्रेष्ठत्व लाभ किया है, उसी तरह प्राच्य जाति ने अन्तर्जगत् की गवेषणा मे। अत: यह ठीक ही है कि जब कभी आध्यात्मिक सामंजस्य की आवश्यकता होती है, तो उसका आरम्भ प्राच्य से ही होता है। साथ-ही-साथ यह भी ठीक है कि जब कभी प्राच्य को मशीन बनाने के सम्बन्ध में सीखना हो, तो वह पाश्चात्य के पास ही बैठकर सीखे। परन्तु यदि पाश्चात्य ईश्वर, आत्मा तथा विश्व के रहस्य सम्बन्धी बातों को जानना चाहे, तो उसे प्राच्य के चरणो के समीप ही आना चाहिए।

"मैं आपके सम्मुख एक ऐसे महापुरुष के जीवन का वर्णन करूँगा, जिन्होंने भारतवर्ष में इन गहन विषयों की एक तरंग प्रवाहित कर दी।"

इसके उपरान्त श्रीरामकृष्ण की अद्भुत जीवनकथा का वर्णन करने के बाद वे निम्नलिखित शब्दों के साथ इसका उपसंहार करते हैं (वही, पृ.२६७) –

"आधुनिक संसार के लिए श्रीरामकृष्ण का सन्देश यही है – 'मतवादों, आचारो, पन्थो तथा गिरजाघरो व मन्दिरो की परवाह मत करो। प्रत्येक मनुष्य के भीतर जो सार वस्तु विद्यमान है, इसकी तुलना मे ये सब तुच्छ हैं, और मनुष्य के अन्दर यह भाव जितना ही अधिक अभिव्यक्त होता है, वह सदा के लिए उतना ही सामर्थ्यवान हो जाता है। सर्वप्रथम इसी धर्म-धन का उपार्जन करो, किसी में दोष मत ढूँढ़ो, क्योकि सभी मत, सभी पथ अच्छे हैं। अपने जीवन द्वारा दिखा दो कि धर्म का अर्थ न तो शब्द होता है, न नाम और न सम्प्रदाय, वरन् इसका अर्थ होता है आध्यात्मिक अनुभूति। जिन्हें अनुभव हुआ है, वे ही इसे समझ सकते हैं। जिन्होंने धर्म की उपलब्धि कर ली है, वे ही दूसरों में धर्मभाव संचारित कर सकते हैं, वे ही मनुष्य-जाति के श्रेष्ठ आचार्य हो सकते हैं – केवल वे ही ज्योति की शक्ति है।

"जिस देश में ऐसे मनुष्य जितने ही अधिक पैदा होंगे, वह देश उतनी ही उन्नत अवस्था को पहुँच जायेगा और जिस देश में ऐसे मनुष्य बिल्कुल नही है, वह नष्ट हो जायेगा – वह किसी प्रकार नही बच सकता। अत: मेरे गुरुदेव का मानव-जाति के लिए सन्देश है कि 'प्रथम स्वयं धार्मिक बनो और सत्य की उपलब्धि करो।' वे चाहते थे कि तुम अपने भ्रातृ-स्वरूप समग्र मानव-जाति के कल्याण के लिए सर्वस्व त्याग दो। उनकी ऐसी इच्छा थी कि भ्रातृ-प्रेम के विषय मे बातचीत बिल्कुल न करो, वरन् अपने शब्दो को सिद्ध करके दिखाओ। त्याग तथा प्रत्यक्षानुभूति का समय आ गया है, और इनसे ही तुम जगत् के सभी धर्मो मे सामंजस्य देख पाओगे। तब तुम्हे प्रतीत होगा कि आपस मे झगड़े की कोई आवश्यकता नही है और तभी तुम समग्र मानव-जाति की सेवा करने के लिए तैयार हो सकोगे। इस बात को स्पष्ट रूप से दिखा देने के लिए कि सब धर्मो में मूल तत्त्व एक ही है, मेरे गुरुदेव का अवतार हुआ था। अन्य धर्म-संस्थापको ने स्वतंत्र धर्मो का

उपदेश दिया था और वे धर्म उनके नाम से प्रचलित हैं; परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के इन महापुरुष ने स्वयं के लिए कोई भी दावा नही किया। उन्होंने किसी धर्म को क्षुब्ध नही किया, क्योंकि उन्होंने प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया था कि वास्तव मे सब धर्म एक ही 'चिरन्तन धर्म' के अभिन्न अंग है।''

श्रुति तथा स्मृति की भारतीय धारणा

उपनिषद् आदि प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करने पर आप देखेंगे कि वे आधुनिक युग मे जन्मे इन महान् आत्माओं के विचारो के साथ कितने सामंजस्य में है। उनमें एक ऐतिहासिक निरन्तरता है। यह नया सामंजस्य भी वर्तमान अवस्थाओ के सन्दर्भ मे वही पुराना सामंजस्य है। भारत में यही बात बारम्बार सिखायी गई है। परिस्थितियाँ बदलती रहती है और हमें उस प्राचीन सत्य के ही एक नये प्रतिपादन की आवश्यकता होती है। सत्य वही रहता है, केवल उसका आवरण बदल जाता है। हमे अपनी अत्यन्त प्राचीन तथा अब भी जारी परम्परा से यही सीखने को मिलता है। दो शब्द है – **श्रुति** और **स्मृति**। **श्रुति** का अर्थ है वेद, विशेषकर उसका उपनिषद् अंश, जो सत्य का विश्लेषण करता है, जबकि **स्मृतियाँ** समकालीन विधि-निषेधो पर चर्चा करती हैं। **स्मृति श्रुति** की अनुगामी है। भारतीय परम्परा इस बात पर बल देती है कि **श्रुति स्मृति विरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी** – जब **श्रुति** तथा **स्मृति** के बीच विरोध होता है, तो **श्रुति** को ही महत्तर प्रमाण माना जाता है। **श्रुति** सनातन है। **सनातन धर्म** से हमारा अभिप्राय **श्रुति** से है। मनुष्य का स्वरूप, ईश्वर का स्वरूप, आध्यात्मिक अनुभूति के उपाय आदि सनातन सत्य है। ये हमारे लिए, अमेरिकी लोगों के लिए और सभी के लिए सत्य हैं; वे सार्वभौमिक है। जैसे वैज्ञानिक सत्य सार्वभौमिक होते है, वैसे ही **श्रुति** के सत्य भी सार्वभौमिक है, क्योंकि वे एक मानव के अन्तरतम के विज्ञान, एक मानवीय सम्भावनाओं के विज्ञान की उपज है। इसीलिए हम इसे **सनातन धर्म** कहते है, ऐसा धर्म जो सनातन है। भगवान बुद्ध अपनी शिक्षाओं में बारम्बार इसका उल्लेख करते हैं – **एष धर्मः सनातनः** – यह धर्म सनातन है। इसी के साथ आता है **युगधर्म** – एक ऐसा धर्म, जो इतिहास के एक विशेष युग के लिए, एक विशेष राष्ट्र के लिए है। और उसे **स्मृति** कहते हैं।

स्मृतियाँ आती और जाती है। भारत में न जाने कितनी **स्मृतियाँ** प्रचलित हुई और त्याग दी गयीं। आज सभी पुरानी **स्मृतियाँ** हमारे लोकतांत्रिक संविधान के विरोध में जायँ, तो उन्हे रद्द कर दिया जायेगा। पुरानी स्मृतियों को बदलने और समकालीन चिन्तन के अनुसार नयी स्मृति का विकास करने का हममें साहस है। सामाजिक परिवर्तन – यह भारत का एक महान् विचार है। और उन सनातन शिक्षाओ का बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार पुनः प्रतिपादन किया जाता है। इसके लिए आपको महान् आचार्यों की आवश्यकता है, क्योकि उन्ही के पास इसे सम्पन्न करने के लिए आवश्यक आध्यात्मिक ज्ञान तथा अधिकार होता है। यह अधिकार एक बिशप, या पोप, या पुरोहित या कोई भी पारम्परिक धार्मिक सत्ता होने से नहीं आता। यह आध्यात्मिक अनुभूति से आता है; यह एक आध्यात्मिक आचार्य के हृदय में निहित अपार करुणा से आता है। इसी प्रकार नयी स्मृतियों का उदय होता है। भारत ने इस आदर्श को जोरो से पकड़ रखा है। और इसके फलस्वरूप वैदिक काल से ही आधुनिक काल तक धर्म मे, समाज मे तथा हमारे देश में अनेक परिवर्तन आये हैं, और इसके बावजूद हम अब भी वही है। **हम सनातन हैं और इसके बावजूद सतत परिवर्तित हो रहे हैं।** यही **सनातन धर्म** शब्द का सार-मर्म है। प्राध्यापक ब्रजेन्द्रनाथ शील, स्वामी विवेकानन्द के सहपाठी और मैसूर विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे; वे अत्यन्त मेधावी थे। उन्होंने कहा है, "भारत की आयु निरन्तर बढ़ रही है, परन्तु यह कभी वृद्ध नही होता।" और इसका कारण यह है कि बीच बीच में इस तरह का समायोजन होता रहता है। यही वह भारत है जो एक नये परिवेश में रूपायित हो रहा है – आवश्यक परिवर्तनों को आत्मसात् करता हुआ वही प्राचीन भारत। बहुत-सी अनावश्यक चीजे काटकर निकाली जा रही हैं। **एक स्मृति को बदलने का साहस, और वह भी शान्तिपूर्वक, यह विशुद्ध रूप से एक हिन्दू विरासत है।** अन्य किसी भी धर्म ने ऐसा साहस नही दिखाया। अन्य सभी धर्मों में **स्मृतियाँ** ही सब कुछ है; उन्हे छूआ नहीं जा सकता; और यदि कोई सुधारक उन्हें बदलने का प्रयास करता है, तो उसे प्रताड़ित किया और मार डाला जाता है। परन्तु हम लोग कहते है, "यदि पुरानी **स्मृति** अब हमारे लिए उपयोगी नही रह गयी है, तो इसे बदल डालो और एक नयी **स्मृति** बनाओ।" श्रीरामकृष्ण ने स्वयं ही कहा है, "मुगल काल का सिक्का अंग्रेजो के राज्य मे नहीं चलता।" इसका तात्पर्य यह है कि पुरानी **स्मृतियों** का वर्तमान में कोई उपयोग नही है। अंग्रेजो के राज्य मे एक नये सिक्के को चलाने की जरूरत थी और भारतीय गणतंत्र के लिए भी। लगभग सौ वर्ष पूर्व भारतीय समाज से यदि कोई विदेश जाता, तो उसका बहिष्कार कर दिया जाता था। परन्तु अब इसकी कौन परवाह करता है?

बहुत-से परिवर्तन आ चुके हैं और उन्होंने हमारे धर्म का शुद्धीकरण करके हमारे समाज को स्वस्थ बनाया है। परन्तु हमें सनातन सत्य रूपी **श्रुति**, मनुष्य का आध्यात्मिक स्वरूप और सत्य की उपलब्धि के लिए उसकी जीवन-यात्रा को नहीं भूलना चाहिए। यही **सनातन धर्म** है। इसी बात पर बल देना एक **अवतार** का महान् अवदान है। मात्र एक सामाजिक नेता

आते हैं, कुछ सामाजिक सुधारों की वकालत करके उन्हें लागू करते है। परन्तु एक **अवतार** समाज को जरा-सा भी अशान्त नहीं करते। वे समाज में एक नया आदर्श स्थापित करते हैं; जिसके द्वारा हम समझते हैं कि क्या अच्छा है और क्या बुरा, इस प्रकार सुधार लागू हो जाते हैं और हम तदनुसार चुपचाप बदलते जाते हैं। यह वह मृदु तथा मौन उपाय है, जिसके द्वारा यह महान् आध्यात्मिक पद्धति समाज पर कार्य करती है। यह एक महान् विचार है। हमें यह पता ही नहीं चलता कि वे महान् आचार्य आये और चले भी गये, परन्तु वे अपने पीछे एक अद्भुत ऊर्जा छोड़ गये हैं। कुछ ही दिनों पूर्व मुझे बल्गेरिया के सोफिया नगर से एक पत्र मिला है। श्रीयुत् अलेक्जेंडर द्वारा लिखित उस अद्भुत पत्र में है, "मेरी पत्नी और मैने The Gospel of Sri Ramakrishna (**श्रीरामकृष्ण-वचनामृत**) ग्रन्थ पढ़ा। मैं तीस वर्ष का और वह तेईस वर्ष की है। उसका नाम ताँतिया और मेरा अलेक्जेंडर है। यह एक अद्भुत ग्रन्थ है। परन्तु हम लोग रामकृष्ण तथा विवेकानन्द के बारे में इससे अधिक कुछ भी नहीं जानते। हम आपसे कुछ जानकारी पाना चाहते हैं। मैंने बैंगलोर में किसी को – प्रसिद्ध फिल्म तारिका श्रीमती देविका रानी को लिखा। उन्होंने उत्तर दिया कि मैं हैदराबाद के स्वामीजी के साथ पत्र-व्यवहार करूँ।" यह व्यक्ति लिखता है कि वह श्रीरामकृष्ण के बारे में, विवेकानन्द के बारे में और भी अधिक जानना चाहता है। वे लोग ये सब प्रेरणाएँ पाने के लिए अतीव उत्सुक हैं। अत: मैंने लिखा, "मैं तुम्हें कुछ पुस्तकें भेजूँगा।" और मैंने पश्चिमी बर्लिन में किसी को उन्हे वह भेज देने को कहा। श्रीरामकृष्ण जैसे महान् शिक्षक आपके जीवन में बिना कोई शब्द किए धीरे-से घुस आते है और पाठक के जीवन में परिवर्तन आने लगते हैं। जब अवतार आते है, तो ऐसा ही होता है। शंकराचार्य बताते हैं कि किस प्रकार **अवतार** समाज में क्रियाशील होते हैं और लोगों को उनके अपने आध्यात्मिक विकास का मार्ग दिखाकर मृदु भाव से समाज को रूपान्तरित कर डालते हैं। यह कैसे होता है? शंकर इसे कुछ वाक्यों में बतायेंगे और हम उसका अध्ययन करेंगे।

शंकराचार्य द्वारा लिखित गीता की भूमिका का अध्ययन करते समय हमें दो महान् विचार प्राप्त हुए थे। पहला, काल के प्रवाह में लोगों के दृष्टिकोण-सम्बन्धी परिवर्तन के फलस्वरूप समाज अध:पतित होता है। काम, क्रोध तथा ऐसे ही अन्य दोषों के आधिक्य से समाज का नैतिक सन्तुलन बिगड़ जाता है। अत: जैसा कि शंकर कहते हैं – धर्म का ह्रास और अधर्म की वृद्धि होती है। तब अत्यधिक वैषयिक आकर्षणों तथा अनियंत्रित कामनाओं के कारण पतन आरम्भ होता है और इसके फलस्वरूप विवेक तथा विज्ञान नष्ट हो जाते हैं। विवेक का अर्थ होता है विचार – क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य, इसका निर्णय करने की क्षमता। जहाँ कही भी किसी वस्तु के प्रति अत्यधिक आसक्ति है, वहाँ हमारा विवेक नष्ट हो जाता है। इसके साथ ही विज्ञान अर्थात् सद्बुद्धि विक्षुब्ध हो जाती है। जब कोई व्यक्ति अपनी विषयों की भूख को संयमित नहीं कर पाता, तो उसके मन में कुछ होता है। जैसा कि कठोपनिषद् कहता है, उसकी इन्द्रियाँ रथ को खींचते हुए घोड़ों के समान यात्री को असहाय छोड़कर भाग निकलती हैं। पतन के दौर में लोगों तथा समाज की ऐसी ही अवस्था होती है। जब धर्म का ह्रास होता है, तो अधर्म में अपने आप ही वृद्धि हो जाती है। जब मानव समाज में नैतिकता घट जाती है, तो अनैतिकता बढ़ जाती है।

मानवीय विकास की अग्रगति में अवतार की भूमिका

हम भारतीय लोगों में प्रचण्ड विश्वास है कि जब कभी ऐसी अवस्था उत्पन्न होती है, जब साधारण मानवीय बुद्धि समाज में पुन: सन्तुलन स्थापित नहीं कर पाती, तब पृथ्वी पर एक दिव्य व्यक्तित्व प्रकट होता है और उसकी शिक्षाओं के द्वारा समाज को एक नया सन्तुलन, आदर्शों की एक ताजी समझ मिलने लगती है। इससे **धर्म** की उन्नति होने लगती हैं और **अधर्म** का ह्रास होने लगता है। यही कारण है कि प्राय: ही समस्याओ का सामना करने के बावजूद हम पिछले ५००० वर्षों से जीवित हैं। बुद्ध के जन्म के पूर्व बौद्धिकता तथा निरर्थक शारीरिक कठोरता का बोलबाला था और जन-साधारण तरह तरह के अन्धविश्वासों तथा मानसिक दुर्बलताओं का शिकार था। ६वीं या ७वीं शताब्दी ई.पू. में बुद्ध का आगमन हुआ। उन्होंने किसी समाज-सुधार आन्दोलन का सूत्रपात नहीं किया। उन्होंने केवल लोगों की आध्यात्मिक भावनाओं को अनुप्राणित किया। इसके फलस्वरूप लोगो मे एक बार पुन: ईमानदारी, सच्चाई, करुणा तथा सेवा के भाव विकसित हुए। लोगों में आध्यात्मिक जागरण के ये ही सुफल हैं। इसी प्रकार महान् आचार्य कार्य करते है और उनसे नि:सृत प्रेरणा के फलस्वरूप महान् सुधार-आन्दोलनों का सूत्रपात होता है। यह वृक्ष की शाखाओं तथा पत्तियों को छोड़कर केवल उसकी जड़ों में पानी देने के समान है।

ये महापुरुष कोई सुधार-आन्दोलन आरम्भ नही करते, क्योंकि ऐसे आन्दोलन समाज या मनुष्यो के मूलभूत रोग से कोई ताल्लुक नहीं रखते। उदाहरण के लिए श्रीरामकृष्ण को ही लीजिए। उन्होंने किसी सुधार-आन्दोलन का सूत्रपात नही किया, परन्तु उनकी प्रेरणा से अनेक सुधार-आन्दोलन आरम्भ होगे, अनेक सन्त, कलाकार आदि आयेगे। मानव-समाज को बस एक प्राथमिक आध्यात्मिक प्रेरणा दे दी जाती है। हमारे देश में ऐसा ही बारम्बार हुआ है। इसने अध:पतन देखा है, पर इसने पुनरुत्थान, पुनर्जीवन भी देखा है। जब कोई राष्ट्र

काफी लम्बे काल तक जीवित रहता है, तो इस तरह के शारीरिक तथा मानसिक रोग प्राय: ही प्रकट होते हैं, परन्तु वह राष्ट्र पुन: युवा हो जाता है। यह अनुभव एकमात्र भारत का ही है और अनेक इतिहासकारों ने इसका उल्लेख किया है।

इस संसार मे और भी अनेक सभ्यताएँ प्रकट हुई, कुछ शताब्दियों तक उन्होंने अपनी भूमिका निभाई। इसके बाद क्षय आरम्भ हुआ और उनका विनाश हो गया। अब हम उनके बारे में केवल पुस्तकों तथा संग्रहालयों के द्वारा ही अध्ययन करते हैं, जबकि हमारी सभ्यता में नैरन्तर्य बना हुआ है। यह प्राय: ही ताजगी प्राप्त करता है, इसमे एक नयी तरुणाई आती है, प्रचण्ड शक्ति आती है और चीजे सुधरने लगती हैं। एक नया युग आरम्भ हो जाता है और लोगों में उच्च नैतिक जागरूकता, मानवीय भावुकता तथा सेवा का भाव विकसित होने लगता है।

गिब्बन के Decline and Fall of the Roman Empire (रोम-साम्राज्य का क्षय और विनाश) नामक ग्रन्थ को पढ़ने से हमें पता चलता है कि वह साम्राज्य कितना शक्तिशाली था। पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र, दक्षिणी यूरोप, उत्तरी अफ्रीका, फिलीस्तीन और इजरायल तक का भूभाग रोम-साम्राज्य के अन्तर्गत था। धीरे धीरे पतन आरम्भ हुआ और इसका स्वरूप क्या था? यह कैसे आया? नस्ल वही थी, वे लोग बुद्धिमान थे, परन्तु सुख के प्रति आकर्षण बढ़ा और वे लोग परिश्रम करना या कठोर जीवन बिताना नहीं चाहते थे। हर व्यक्ति सुख और लाभ का इच्छुक था, परन्तु शायद ही कोई समाज के कल्याण में योगदान करना चाहता था। इस प्रकार रोमन लोग आलसी हो गये; वे केवल सुख चाहते थे और शारीरिक परिश्रम करने को उनके पास गुलाम थे। सुख-सुविधा के फलस्वरूप मनुष्य का सौन्दर्य-बोध बिगड़ा। वे हिंसा तथा रंगरेलियों में डूब गये। उनकी विशाल रंगभूमियों पर गुलामों को जंगली जानवरों के साथ लड़ाया जाता और सरकार के उच्च अधिकारियों समेत हजारों लोग उन्हें देखते थे। जब कोई सिंह किसी मनुष्य को फाड़कर टुकड़े टुकड़े कर देता, तो वे लोग तालियाँ बजाते। ऐसी परिस्थिति में आपको अभिरुचियों तथा मानवीय आदर्शों में गिरावट नजर आती है। आश्चर्य की बात तो यह है कि उन दिनों रहनेवाले लोगों को बोध नहीं हुआ कि उनका पतन हो रहा है, क्योकि इसकी गति अत्यन्त मन्द थी। सभ्यता मन्द गति से बढ़ती है और मन्द गति से क्षय को प्राप्त होती है। एक शताब्दी या उससे भी अधिक काल के बाद ही हमें बोध होता है कि समाज मे कुछ गड़बड़ी है। गिब्बन ने एक बड़े ही अद्भुत वाक्य के द्वारा रोमन साम्राज्य में धर्म की अवस्था का भी उल्लेख किया है। रोमन साम्राज्य के सभी सम्प्रदाय तथा धर्म, लोगों द्वारा समान रूप से सत्य, दार्शनिकों द्वारा समान रूप से गलत और न्यायाधीशों द्वारा समान रूप से उपयोगी माने जाते थे। पुस्तक का Decline and Fall of the Roman Empire (रोम-साम्राज्य का क्षय और विनाश) नाम भी बड़ा अभिव्यंजक है। लोग एक भ्रष्ट जीवन बिता रहे थे। जब विदेशी आक्रान्ता आये, तो युवक लोग लड़कर साम्राज्य की रक्षा करने को अनिच्छुक थे। उनके पास अपने स्थान पर लड़ने के लिए भाड़े के योद्धा थे।

हम लोग सुख-सुविधा चाहते हैं। कोई भी नाइट-क्लब छोड़कर युद्ध के मोर्चे पर जाना नहीं चाहता। यह अध:पतन जब समाज के महत्त्वपूर्ण लोगों को प्रभावित करता है, तो पूरी संरचना ढह जाती है। एक ही विदेशी आक्रमण से पूरा रोमन समाज ध्वस्त हो गया और वह फिर कभी नही उठा। रोमन साम्राज्य की यही कहानी है। मिस्र, बेबीलोन, असीरिया आदि अन्य अनेक साम्राज्य ऐसी ही अवस्थाओं से होकर गुजरे।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद यूरोप के अनेक विचारक सोचने लगे कि कहीं यूरोप भी तो ऐसी ही अवस्था से नही गुजर रहा है। ओसवाल स्पेंगलर द्वारा लिखी हुई The Decline of the West (पश्चिम का अध:पतन) यूरोप में इस (२०वीं) शताब्दी में यूरोपीय सभ्यता पर छपनेवाली पहली पुस्तक थी। यह बड़ी सशक्त शैली में लिखी गयी थी, जिसमें लेखक का कहना था कि पाश्चात्य समाज ने अपना कार्य समाप्त कर लिया है और अब यह क्षय की अवस्था में है। परन्तु In Defence of the West (पश्चिम के बचाव में) लिखनेवाले फ्रांस के हेनरी मसाऊ आदि पुरातनपन्थी उनसे सहमत नहीं हुए। उनका विचार था कि अनेक उपनिवेश अपने अधीन होने के कारण वे अब भी शक्तिशाली हैं। इसके बाद उससे भी गम्भीर दूसरा विश्वयुद्ध आया और तब से पश्चिम में अपनी सभ्यता की कमियो पर काफी विचार चल रहा है। अपरिष्कृत भौतिकता का अतिरेक तथा इच्छाओं में बेतहाशा वृद्धि इस बात का द्योतक है कि समाज में कुछ विशेष गड़बड़ है। इस कारण आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के अध:पतन पर अधिकाधिक पुस्तके लिखी जा रही हैं।

❖ (क्रमश:) ❖

एक संन्यासी की भ्रमण-गाथा (३)

स्वामी जपानन्द

(रामकृष्ण संघ के एक वरिष्ठ संन्यासी स्वामी जपानन्द जी ने 'प्रभु परमेश्वर जब रक्षा करें' शीर्षक के साथ अपनी भ्रमण-गाथा लिखी थी, जो सम्भवत: रामकृष्ण कुटीर, बीकानेर से प्रकाशित हुई । हमे एक जीर्ण-शीर्ण प्रति मिली है, जो हमें अत्यन्त रोचक तथा उपयोगी प्रतीत हुई, अतएव 'विवेक-ज्योति' के पाठकों के हितार्थ इसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । – सं.)

पठानकोट में

परिव्राजक संन्यासी चम्बा (हिमालय) से उतरकर पठानकोट आया कि बहुत जोर का बुखार चढ़ा। इतना कि बेहोश पड़ा रहा। जब होश में आया तो बहुत कमजोर हो जाने के कारण उठकर बैठने में भी मुश्किल लग रहा था। दूसरे दिन भी कमजोरी खूब रही, पर बुखार का जोर न था। उसी रोज वहाँ के आर्यसमाज के अध्यक्ष बाबू अच्छड़मल जी, जो इसके पूर्व परिचय मे आ गए थे, घोड़े पर चढ़कर उस मन्दिर के पास से घूमने या किसी काम से जा रहे थे। उन्होंने संन्यासी को देख लिया और पहचाना। तुरन्त उतरकर आए और हाल पूछने के बाद संन्यासी को आर्यसमाज में ले गए तथा वही ठहराने का प्रबन्ध किया। डॉक्टर से इलाज की व्यवस्था भी की। संन्यासी लगभग दो महीने से ज्यादा बीमार रहा, बाद मे देशी औषधि के सेवन से बुखार गया, जो संन्यासी ने स्वयं ही बताई थी। परन्तु इस मलेरिया से वह इतना कमजोर हो गया था कि उठ-बैठ भी मुश्किल से पाता था। जरा चलने-फिरने की शक्ति आते ही पठानकोट छोड़ने का विचार प्रकट किया। उसी रोज कोई बीस मील दूर पहाड़-जंगल के बीच में स्थित एक गाँव के जागीरदार श्रीमान प्रद्युम्न सिंह आर्यसमाज मे आए और संन्यासी से बातचीत करके जब उन्हें मालूम हुआ कि स्वास्थ्य के लिए वायु-परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत होने से, कहीं अन्यत्र जाने का विचार किया है, तो अपने गाँव ले जाने का आग्रह करने लगे। बोले – "स्थान प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच और स्वास्थ्यप्रद है, पानी हाजमे के लिए अच्छा है, कुछ रोज रहने से तबीयत सुधर जाएगी। सत्संग का भी अच्छा अवसर मिलेगा।" संन्यासी राजी हो गया और तीसरे ही दिन उधर चल पड़ा।

सुबह निकलकर बस-तांगे से चलकर करीब चार बजे उस गाँव मे पहुँचे। सचमुच सुन्दर स्थल था। गाँव के बाहर एक छोटा-सा मकान और बाग, नीचे दो कोठरियाँ, जिनमे ईट बनानेवाले तीन-चार बिहारी भैया लोग रहते थे, ऊपर छत के साथ एक छोटा-सा कमरा था, जिसमें संन्यासी को ठहराया। छत पर से चारो ओर का दृश्य बड़ा आकर्षक लगा। गाँव के ५-७ लोग मिलने आए, बातचीत हुई। सबने खुशी जताई और सेवा बताने के लिए भी विनय कर गए। ... श्री प्रद्युम्न सिह के घर जाकर रोटी खाकर आते आते शाम होने लगी।

जहाँ वह बाग तथा मकान था, उससे कुछ सौ कदम के फासले पर गाँव और बाग के बीच एक नाला था। नाले के उस तरफ एक मस्जिद थी। प्रद्युम्न सिह जी के साथ छत पर बैठकर बाते करते समय संन्यासी ने देखा कि एक मुल्लाजी तथा दो-तीन अन्य लोग संन्यासी की तरफ उँगली दिखा-दिखाकर कुछ कह रहे हैं। संन्यासी ने प्रद्युम्न सिह से कहा, तो वे झट उठकर गाँव की तरफ चले गए। दस मिनट बाद चिन्तित होकर उधर वापस आए और संन्यासी से कहा – "घर चलिए, यहाँ मुसलमान हमला कर सकते हैं। कुछ रोज पहले हम आर्य-समाजियों ने एक विधवा की शुद्धि करके समाज में लिया है। इन लोगों ने उसे भगा ले जाकर मुसलमान किया था। एक और विधवा बाई शुद्धि के लिए आई है, इसलिए ये लोग खूब गरम हो गए है। इन्होंने सोचा है आप शुद्धि प्रकरण में भाग लेने के लिए आए है, इसी कारण ये सब बड़े नाराज है और हमला करना चाहते हैं। मौलवीजी ने गाँव के सारे मुसलमानो को इकट्ठा करने के लिए फर्मान जारी किया है, बेहतर होगा कि आप हमारे साथ रहे।"

संन्यासी ने कहा – "पर मेरे ही कारण हो तो ये लोग उधर भी पहुचेंगे। इससे बेहतर है कि आप चले जाइए और सावधान हो जाइए; मै इधर ही रहूँगा, मै नही आता। जल्दी जाइए और सबको सावधान कर दीजिए।"

जाते समय प्रद्युम्न सिंहजी ने कहा – "स्वामीजी, हमारा मुहल्ला तो ऐसा है कि दरवाजा बन्द करने पर किला हो जाता है और हम बन्दूक वगैरह रखते है, अगर उधर हमला किया तो आसानी से कुछ नही कर सकेंगे।"

थोड़ी देर बाद प्रद्युम्न सिह फिर आए और कहा – "मेरी बेटी कह रही है कि आप उधर घर पर ही आ जायें, वह खुद भाला-तलवार आदि लेकर आपके पास खड़ी रहेगी और प्राण रहते आपकी कोई हानि न होने देगी।" उनकी आँखो मे आँसू थे। ... संन्यासी यह बात सुनकर आनन्द से परिपूर्ण होकर बोला – "वाह, बेटी वाह, इस समय भारतमाता को ऐसी ही जरूरत है! मेरा बहुत बहुत आशीर्वाद! पर आप जाइए, उधर मस्जिद मे भीड़ हो गयी है, रास्ता बगल में ही है, इसलिए चले जाइये और तैयार होकर रहिए, यदि कुछ हुआ तो मै तो संन्यासी हूँ, आप बेफिक्र रहिए!" प्रद्युम्न सिह जी द्रुत वेग से चले गए। उनकी वह लड़की १५-१६ ही वर्ष की

थी। वेद पढ़ रही थी, अस्त्र चलाने में कुशल थी। ... उसी समय एक वृद्ध आया – "महात्माजी, यदि आपको जीना हो, तो भाग जाइये! मुसलमान आक्रमण करने वाले हैं। आप समाजी है क्या?" – "नही जी, पर उससे क्या? आप कौन हे?" – "मै सनातनी हूँ। किसी विधवा की शुद्धि करके आर्य-समाजियो ने झगड़ा पैदा किया है, पर आप इस जंगल के रास्ते से भाग जाइए, यह पठानकोट तक जाता है।"

"पर महाशय, आप जल्दी चले जाइए और अपना घर सँभालिए। मै नही भागता, चाहे कुछ भी हो जाय। जल्दी उठिए और यहाँ से चले जाइए, बस।"

संन्यासी को बड़ा दुख हुआ – जहाँ एक कोमल कुमारी ने प्राण देकर रक्षा करने के लिए तैयारी दिखाई, वही यह भाग जाने का उपदेश दे रहा है। आदर्श और तालीम ने स्वभाव और चरित्र मे कितना फर्क कर दिया है!

वृद्ध बड़बड़ाता हुआ चला गया। संध्या ने आ घेरा था, अन्धेरा हो गया था, दो सिख जवान हट्ठे-कट्ठे मजबूत हाथ मे कृपाण लेकर द्रुत गति से आकर संन्यासी के पास खड़े हुए – "मत्था टेक दे! सन्त हमारे साथ चलिए, इधर आप पर हमला कर देगा मुसलमान लोग, उधर हमारे घर चलिए, फिर कोई डर नही।"

"पर अगर उधर हमला कर दे तो?"

"क्या मजाल है, कुछ नही कर सकता, हम खबर ले लेंगे।"

"अच्छा तुम कितने घर हो?"

"सात घर।"

"और मुसलमान?"

"डेढ़ हजार घर।"

"हिन्दू?"

"करीब तीन सौ घर।"

"देखो, डेढ़ हजार घरवाले यदि आ जायँ, तो तुम्हे चटनी बना देगे। ऐसा साहस मुझे लेकर मत करो। अगर कुछ हुआ तो मौत मे भी मुझे अपार दुख रहेगा। इससे यह ठीक है कि मेरे पर से ही सब खत्म हो जाय, गाँववाले शान्ति मे रहे। जाओ, तुम दोनों घर चले जाओ, उधर होशियार रहो!"

"नही सन्त, हम नही जायेगे। आप गुरु हैं, आप पर जुलुम हो, यह हम बरदास्त नही कर सकेगे! ... अगर आप घर पर नही आते हो तो गुरुद्वारे में ही ठहरिए, हम भी उधर रहेंगे। गुरुद्वारे पर ये लोग कुछ नही करेगे।"

"ना, कही भी नही जाता, तुम इधर से चले जाओ।"

लाल आँखकर उन्मुक्त कृपाण हाथ मे ले दोनो सीढ़ी से नीचे उतरकर बैठ गए। संन्यासी ने देखा तो बिहारी भैया जो थे, लापता है। पहले ही सटक गए हैं। क्या करें उन दोनो जवानो को ऊपर ही बुलवा लिया। इतने मे देखने में आया कि मस्जिद के पास की सड़क से एक सिक्ख बाई हाथ मे लोटा व लालटेन लेकर आ रही है।

"आओ, देखो तो सही, वह कौन आ रही है?"

एक ने कहा – "मेरी अम्मा।"

"देखो, अगर कोई एक बुरा शब्द भी कह देगा तो लड़ाई हो जाएगी। ऐसा साहस करना उचित नही, इससे नुकसान और आफत हो जाने का डर रहता है।"

"मजाल है कोई एक शब्द बोल दे? किसी के दो सिर तो हैं नहीं।"

बाई वही आयी, अधेड़ उम्र की होगी, पर तन्दुरुस्त व खूबसूरत थी।... "मत्था टेक दे! महात्मा! ये बच्चे इधर आ गए, पर आपके लिए दूध भी न लाए! भैस का दूध ले आयी हूँ, गर्म है, पी लीजिए! भूख भी तो लगी होगी?... और सब तो घर-द्वार बन्दकर मुहल्ले मे बैठ गए है, पर सन्त क्या भूखा रहेगा? हम तो है न!"

लोटे मे ताजा गरम दूध था, सेर भर रहा होगा।

"पर, माईजी, आपका आना ठीक नही हुआ, एक बात पर खून-खराबी हो जाने की ऐन पर है।"

"मुझे कौन कहेगा? दो सिर किसी के थोड़े ही हैं?"

"पर देवी, डेढ़ हजार घर हैं, यदि आधे भी हमला कर दें, तो रक्षा हो सकती है क्या? और अपमान हो, ऐसा अवसर देना ही क्यो? इससे तो ... "

बीच मे ही कहने लगी – "अपने धर्म पर आफत है। (संन्यासी को बताकर) तो क्या हम चुप बैठे रह सकते है?

"पर देवीजी, इन दोना बच्चो को साथ ले जाइए, यहाँ डर है। अगर वे लोग कुछ कर दे तो आफत हो जाएगी!"

"आप भी चले तो ये भी आयेगे। धर्म की रक्षा के लिए अगर जान चली जाय, तो इससे बड़ा क्या हो सकता है? मेरी कोख उज्ज्वल होगी। ... सावधान होकर रहो बेटे।" कहकर वे चलने लगी। साथ आने के लिए नही कहा। संन्यासी ने घर तक पहुँचा आने को कहा।

धन्य हो सिक्ख जननी! भारत के गौरव की रक्षा एक समय तुम्ही ने की थी। जैसे राजपूत वीरांगनाओ ने धर्म-शील की रक्षा के लिए जान कुर्बान की, तुमने भी धर्म की रक्षा के लिए सर्वस्व स्वाहा कर दिया था। धन्य घड़ी जो ऐसी बात सुनी, धन्य! ... संन्यासी ऐसा सोचने लगा। आखो के सामने ऐतिहासिक युगो की पुनरावृत्ति हो गई! ...

अर्जुन सिह और उसका चचेरा भाई लौट आये और कृपाण लेकर संन्यासी के पास बैठ गए। ... उधर मस्जिद मे

से गैसबत्ती लेकर शोरगुल मचाते हुए जुलूस चला, छाती पीट-पीटकर गा रहे थे जिसकी एक कड़ी याद है – "दे दे जान मदीनेवाले कोई!" कहते हैं कि – मक्का पर आक्रमण से पहले ऐसा ही कुछ मदीने में गाया गया था।...

रात भर तीनों लोग बैठे रहे। कब आक्रमण कर दें क्या ठिकाना? गाँव के बीच कुछ न हो जाय, मन में यही फिक्र। पर सुबह हो गई, कुछ नहीं हुआ! सुबह नमाज पढ़ने के लिए मस्जिद में बहुत से हाजिर हुए।। ... देखा, उसी जंगल पथ से जिससे भाग जाने के लिए वृद्ध ने कहा था, घुड़सवार पुलिस के ६-७ लोग आ रहे थे। मकान के पास से ही रास्ता था। उधर आते ही पुलिस इंसपेक्टर ने, जो सरदारजी थे, संन्यासी को पहचान लिया। पठानकोट में दो बार मिले थे। ... "क्यों स्वामीजी! आप इधर कब आए?"

"सरदारजी, जरा इधर आइए, खास बात है।"

सरदारजी अन्य सवारों को कुछ हुक्म देकर घोड़े से उतर पड़े और छत पर आए तो कृपाण खोलकर बैठे हुए दो सिक्ख जवानों को देखकर बड़े घबड़ाए। संन्यासी ने आश्वासन दिया और अर्जुन को सब हाल सुनाने को कहा! सब सुनकर सरदारजी ने कहा –"आप निश्चिन्त रहिए, मैं अभी सब ठीक कर देता हूँ।" और सीधे मस्जिद में गए। आधा घण्टा भी न हुआ होगा – मुल्लाजी और (गाँव के) पुलिस हेड को साथ लेकर आए। मुल्लाजी ने माफी माँगकर कहा – "हमने समझा था कि आप आर्यसमाजी हैं, पर सो तो नहीं है।" संन्यासी ने कहा – "भले ही मैं समाज का सदस्य नहीं हूँ, पर इस वक्त तो समाजी ही हूँ। हर एक को अपने धर्म का प्रचार करने का हक है, उसका विरोध खून-खराबे से करने की धमकी देने का अधिकार किसी को थोड़े ही हो सकता है! अब आपने लोगो को उत्तेजित किया है, मेरी जान तो खतरे में है, कोई हमला कर दे तो?"

सरदारजी ने कहा – "बिल्कुल सही बात। अगर स्वामीजी को कुछ हुआ, तो याद रखिये आप ही उसके लिए जिम्मेवार होंगे। ... ऐसा कीजिए कि जब तक स्वामीजी यहाँ है, आप दिन-रात दो दो आदमी इधर पहरा देने के लिए रखिए। यह आपकी जिम्मेवारी रहेगी।"

बस, दिन और रात दो दो आदमी (मुस्लिम भाई) पहरा देने लगे। ५-७ दिन बाद मुल्लाजी मिले – "और कितने रोज आप यहाँ ठहरेंगे?"

"मर्जी हो तब तक" – संन्यासी ने कहा। (संन्यासी १५-१६ रोज उधर ठहरे थे।)

वहाँ रक्षा किसने की? जय भगवान! ❖ (क्रमशः) ❖

मनोविनोद

दो मित्रों के बीच बहस छिड़ गई कि दोनों में से किसका नौकर ज्यादा मूर्ख है। आखिरकार दोनों ने परीक्षा कर लेना ही उचित समझा। पहले मित्र ने अपने नौकर को बुलाया और उसके हाथ में दस रुपये का नोट देते हुए कहा – "जाओ, एक टी.वी. खरीद लाओ।" नौकर ने रुपया जेब में रखा और बाजार की ओर चल दिया। पहले मित्र ने मुस्कुराते हुए दूसरे से कहा – "देखा! कितना बड़ा मूर्ख है?" दूसरे मित्र ने कहा, "ठीक है, जरा मेरे नौकर को भी देख लो।" इतना कहकर दूसरे ने भी अपने नौकर को बुलाया और कहा, "सुनो, जरा जाकर देख आओ तो कि मैं आज दफ्तर गया हूँ या नहीं।" नौकर उसके दफ्तर की ओर चल दिया। इस पर दूसरे ने पहले से कहा, "अब बताओ, किसका नौकर बड़ा मूर्ख है?"

इधर अपने अपने काम पर गये दोनों नौकरों की बाजार में पहुँचकर आपस में भेंट हो गई। दोनों के बीच चर्चा छिड़ गयी कि दोनों में से किसका मालिक ज्यादा मूर्ख है। पहले नौकर ने कहा, "मेरे मालिक ने मुझे दस रुपये देकर टी.वी. खरीदने भेजा है। अरे, टी.वी. तो मैं एक क्या दो खरीदकर ले जाता, परन्तु उसे यह भी नहीं मालूम कि आज रविवार की छुट्टी है।" दूसरा नौकर बोला, "इसमें क्या है? मेरे मालिक ने तो कहा है कि जाकर देख आओ कि आज मैं दफ्तर गया हूँ या नहीं। उसके पास में ही तो टेलीफोन रखा था, क्या वह फोन करके नहीं पूछ सकता था?"

सन्त दुर्गाचरण नाग

स्वामी विदेहात्मानन्द

दुर्गाचरण एक बार दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण देव के कमरे में बैठे हुए थे। तभी नरेन्द्रनाथ (बाद मे स्वामी विवेकानन्द) ने **'शिवोऽहं शिवोऽहम्'** आवृत्ति करते हुए वहाँ प्रवेश किया। वह एक अद्‌भुत मिलन था – एक ओर थे शरणागत भक्त, दूसरी ओर विचार-परायण अद्वैतवादी; और बीच मे समन्वयावतार श्रीरामकृष्ण ! ठाकुर ने दुर्गाचरण की ओर संकेत करते हुए नरेन्द्र से कहा, "इसी में ठीक ठीक दीनता है, रंचमात्र भी दिखावा नही है।" नरेन्द्र ने स्वीकार करते हुए कहा, "आप जब कहते हैं, तो ऐसा ही होगा।" दोनों के बीच चर्चा शुरू हुई। भक्त बोले, "उनकी इच्छा के बिना पेड़ का पत्ता तक नही हिलता।" ज्ञानी बोले, "मै 'उनकी' आदि नही समझता। मै ही प्रत्यक्ष आत्मा हूँ – मेरी ही इच्छा से यह विराट् ब्रह्माण्ड यंत्रवत् परिचालित हो रहा है।" इस प्रकार उनके बीच चर्चा होती रही। अन्त में उन्हें विराम देते हुए श्रीरामकृष्ण ने हँसते हुए दुर्गाचरण से कहा, "जानते हो? यह म्यान से निकली हुई तलवार है, इसी के मुँह में ये बातें शोभा देती हैं; नरेन ऐसी बात कह सकता है।" तभी से दुर्गाचरण के मन में दृढ़ धारणा हो गई कि नरेन्द्र मनुष्य नहीं हैं, अपितु ज्ञानगुरु महादेव स्वयं ठाकुर की लीला में सहायता करने को नरेन्द्र-रूप में अवतीर्ण हुए हैं; अत: शिवावतार नरेन्द्र को प्रणाम करके वे चुप हो गये। परवर्ती काल में स्वामीजी ने भी कहा था, "मैंने पृथ्वी भर के अनेक स्थानों का भ्रमण किया है, पर नाग महाशय के समान महापुरुष मैंने कही भी नहीं देखा।"

इन दोनों व्यक्तित्वों की तुलना करते हुए बँगला के मशहूर नाट्यकार श्री गिरीशचन्द्र घोष ने कहा था, "नरेन (स्वामी विवेकानन्द) और नाग महाशय को बाँधने जाकर महामाया बड़ी मुश्किल में पड़ गयीं। नरेन को वे जितना ही बाँधती, वे उतने ही बड़े होते जाते – माया की डोरी छोटी पड़ती जाती। अन्त में नरेन इतने बड़े हुए कि माया ने निराश होकर उन्हें छोड़ दिया। नाग महाशय को भी महामाया ने बाँधने की चेष्टा की; पर वे जितना ही बाँधतीं, नाग महाशय उतना ही सिकुड़ते जाते। अन्त में वे इतने छोटे हो गये कि मायाजाल के भीतर से होकर बाहर निकल आये।"

यथार्थ विनय की प्रतिमूर्ति साधु दुर्गाचरण नाग महाशय का संक्षिप्त जीवन-परिचय इस प्रकार है – पूर्वी बंगाल (अब बांग्लादेश) के नारायणगंज से एक मील पश्चिम में बसे देवभोग ग्राम में २१ अगस्त १८४६ ई. के दिन दुर्गाचरण का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम दीनदयाल और माता का त्रिपुरासुन्दरी था। चार वर्ष बाद उनको एक कन्या भी हुई, जिसे सारदा नाम दिया गया। इसके चार वर्ष बाद, इन दोनो बच्चों को ननद भगवती की गोद में सौंप, माँ ने स्वर्गारोहण किया। बालविधवा भगवती ने ही बड़े स्नेहपूर्वक इन दोनों का लालन-पालन किया। दुर्गाचरण भी अपनी बुआ को ही 'माँ' कहते थे।

उनके पिता दीनदयाल कलकत्ते की कुमारटोली के राजकुमार तथा हरिचरण पाल की गद्दी में नौकरी करते और पास ही एक खपड़ैल के मकान में निवास करते थे। मालिकों का उन पर ऐसा विश्वास था कि वे उनसे कभी हिसाब नहीं माँगते थे।

लम्बे बालोवाले सुशील तथा हृष्ट-पुष्ट बालक दुर्गाचरण को आस-पड़ोस की महिलाएँ गोद में खेलाया करती थीं। संध्या को वह नक्षत्रखचित आकाश की ओर देखते हुए बुआ से हठ करने लगता, "चलो माँ, उस देश को चले; अब यहाँ अच्छा नहीं लगता।" चन्द्रोदय होने पर वह तालियाँ बजाते हुए नृत्य करता; हवा में झूमते हुए वृक्षों को देखकर कहता, "माँ, मैं उनके साथ खेलूँगा" और उन्हीं के समान हिल-डुलकर अपने मधुर नृत्य से बुआ को मंत्रमुग्ध कर लेता।

उसकी बुआ पुराणों की कथाएँ सुनाने में बड़ी कुशल थीं। इन्हें सुनकर बालक रात में देवी-देवताओं के स्वप्न देखता। बाल्यक्रीड़ा में उसकी ज्यादा रुचि नही थी, पर संगी-साथियों के अनुरोध पर कभी-कभी वह उनके खेल मे भाग ले लेता। अपने दल की जीत के लिए यदि साथी उसे झूठ बोलने को कहते, तो वह उसे अस्वीकार कर देता और इस कारण उसे कभी-कभी मार भी खानी पड़ जाती थी।

नारायणगंज में एक ही विद्यालय था और उसमें तीसरी श्रेणी तक की ही पढ़ाई होती थी। अत: इसके बाद उसका अध्ययन बन्द हो गया। परन्तु इससे बालक की ज्ञान-पिपासा शान्त नही हुई। एक दिन सुबह वह अपनी धोती की छोर में थोड़े से मुरमुरे बाँधकर, बिना बताए विद्यालय की खोज में दस मील दूर स्थित ढाका की ओर चल पड़ा। दिन भर बुआ को चिन्तातुर रखने के बाद शाम को घर लौटकर उसने बताया कि वह प्रतिदिन ढाका जाकर वहाँ के नार्मन स्कूल मे पढ़ेगा। बुआ की सहमति पाकर उसने वहाँ डेढ़ साल तक पढ़ाई की। थोड़े ही दिनों में वे बँगला रचना में विशेष दक्ष हो गये। जब वे आगे की पढ़ाई के लिए कोलकाता गये, तो चरित्र-गठन के उद्देश्य से लिखी गयी अपनी रचनाओं को उन्होंने 'बालको के प्रति उपदेश' के नाम से छपवाकर नि:शुल्क बाँटा था।

पर कोलकाता जाने के पूर्व बुआ के आग्रह पर उन्हें प्रसन्न कुमारी नामक बालिका से शादी करनी पड़ी। वधू के गृहप्रवेश के बाद ही उनमें एक विचित्र आचरण दीख पड़ा। कही उसके

साथ न सोना पड़े, इस भय से वे संध्या होते ही एक वृक्ष पर चढ़ जाते और अपने कक्ष में सोने की अनुमति पाकर ही नीचे उतरते। बुआ को इस पर चिन्ता तो हुई, पर उन्होंने सोचा कि बाद मे सब ठीक हो जायेगा। दुर्गाचरण के कोलकाता में रहते ही प्रसन्न कुमारी का देहावसान हो गया था।

कोलकाता में कैम्पबेल मेडिकल स्कूल में पढ़ते हुए वे पिता के साथ निवास करने लगे। पर कुछ काल बाद पढ़ाई छोड़कर वे होम्योपैथी का अभ्यास करने लगे। इस विद्या में निपुणता प्राप्त करने के बाद उन्होने दवाइयों का एक छोटा-सा बक्सा खरीद लिया और पढ़ाई के साथ-ही-साथ वे मुहल्ले मुहल्ले घूमकर दीन-दुखियो की मुफ्त चिकित्सा करने लगे।

इन्ही दिनो दुर्गाचरण का सुरेशचन्द्र दत्त के साथ परिचय हुआ। कभी-कभी दोनो ब्राह्मसमाज में जाते। वहाँ केशवचन्द्र के व्याख्यान पर मुग्ध होने के बावजूद उन्हें वहाँ के आचार पसन्द नहीं आते थे। ब्राह्मसमाज द्वारा प्रकाशित सन्तों के चरित वे बड़े मनोयोग के साथ पढ़ते तथा पुराणों के अनुवाद में भी रुचि लेते। बहुधा वे साधु-संन्यासियों के साथ गंगातट पर बैठे धर्मचर्चा में लगे रहते। एक वृद्ध ब्राह्मण की सलाह पर श्मशान में बैठकर जप करते हुए उन्हें एक शुभ्र ज्योति का दर्शन हुआ था। तब से वे नियमित साधना में लग गये।

पिता दीनदयाल ने सब कुछ समझने के बाद उनका दुबारा विवाह करने का निश्चय किया। पिता की जिद के आगे नाग महाशय को झुकना ही पड़ा। विषवत् प्रतीत होने पर भी वे पुन: शादी के लिए राजी हुए। शरत् कामिनी देवी के साथ विवाह होने के बाद दुर्गाचरण कोलकाता लौट आये और गृहस्थी चलाने हेतु फीस लेकर डॉक्टरी करने लगे। इस प्रकार रोगियों की सेवा, मित्रों की संगति तथा धर्मचर्चा में उनके सात वर्ष बीत गये। सहसा गाँव से सूचना आई कि उनकी मातृतुल्य बुआ बीमार हैं। वहाँ जाकर वे बुआ की सेवा में लग गये। मृत्यु के पूर्व बुआ ने आशीष दिया, "तेरी राम मे मति बनी रहे'। दुर्गाचरण इस मर्मभेदी शोक से उन्मत्त हो उठे।

पिता उन्हे पुन: कोलकाता ले आये। चिकित्सा-कार्य शुरू कर देने पर भी अब उनका मन अर्थोपार्जन में नही लगता था। रोगियों से धन लेना तो दूर, वे उनकी सेवा मे औषध-पथ्य तथा अपने उपयोग की चीजें तक दे आते थे। शीघ्र ही वे एक अच्छे चिकित्सक के रूप मे प्रसिद्ध हो गये।

पिता के मालिक पाल-बाबुओं ने भी उन्हें अपना पारिवारिक चिकित्सक नियुक्त कर लिया था। एक बार उनके परिवार में हैजे से आक्रान्त एक महिला को अद्‌भुत रूप से ठीक कर देने पर पाल-बाबुओ ने उन्हे रुपयो से भरा चाँदी का एक डिब्बा उपहार मे दिया। पर दवाइयो की कीमत तथा अपने पारिश्रमिक के रूप मे बीस रुपयों से अधिक लेने को वे कैसे भी राजी नही हुए। इस तरह ईमानदारी से वे जो कुछ भी कमाते, उसे पिता को सौंप देते और स्वयं जरूरत होने पर उन्ही से माँग लेते। धनाभाव के कारण पिता को स्वयं ही रसोई बनाने में लग जाते देख, उन्हें श्रम से बचाने हेतु दुर्गाचरण अपनी सहधर्मिणी को कोलकाता ले आये, पर वे अपनी गृहस्थी के प्रति विरक्त ही रहे और अवकाश के समय पिता को भागवत आदि सुनाते।

सुरेश बाबू आदि ब्राह्म-भक्तों के साथ मिलकर वे गंगातट पर उपासना किया करते थे। उपासना के बाद वे कीर्तन मे उन्मत्त होकर नृत्य करते हुए भावविभोर हो जाते। अब नाग महाशय को लगा कि परम आध्यात्मिक उन्नति के लिए गुरुमंत्र लेना जरूरी है, अत: वे अपनी पत्नी के साथ विक्रमपुर जाकर अपने कुलगुरु कौल-संन्यासी कैलाशचन्द्र भट्टाचार्य से शक्तिमंत्र ले आये। इसके बाद वे बड़ी कठोर साधना मे डूब गये। एक बार तो वे ध्यान में इतने तन्मय हो गये थे कि ज्वार में बह गये और चेतना लौटने पर तैरकर वापस आये। इन्ही दिनो उन्होने काली-विषयक अनेक भजनों की रचना की थी।

श्रीरामकृष्ण से साक्षात्कार

इधर ब्राह्मसमाज के स्रोतों से सुरेश बाबू को पता चला कि सर्वदा भगवच्चर्चा में ही निमग्न रहनेवाले एक सर्वत्यागी परमहंस दक्षिणेश्वर में रहते हैं। किसी तरह रास्ता पूछते हुए वे दोनों दक्षिणेश्वर पहुँचे। भेंट होने पर श्रीरामकृष्ण ने उनका परिचय पूछा और कीचड़ में रहनेवाली 'पॉकाल' मछली की भाँति निर्लिप्त भाव से संसार में रहने का उपदेश दिया। तदुपरान्त उन्होंने उनको पंचवटी में ध्यान करने भेजा। पुन: आने का वादा करके विदा माँगकर शाम को वे लोग घर लौटे।

इसके हफ्ते भर बाद ही वे दोनों फिर दक्षिणेश्वर गये। श्रीरामकृष्ण ने उनका स्वागत किया और दुर्गाचरण को पास बैठाकर कहा, "भय क्या है? तुम्हारी तो बड़ी उच्च अवस्था है।" थोड़ी देर बाद ठाकुर ने उनसे अपना गमछा आदि मँगवा कर और पानी भरने को कहकर उनकी सेवाकांक्षा पूर्ण की। उस दिन उन्होंने सुरेश बाबू को दुर्गाचरण के बारे मे कहा था, "देखते हो न, यह आदमी मानो अग्नि है, ज्वलन्त अग्नि!"

तीसरी बार नाग महाशय अकेले ही गये थे। पिछली बार वे श्रीरामकृष्ण की चरणधूलि नही ले सके थे, इसका उनके मन में खेद था। पर इस बार उनके आते ही ठाकुर बोले, "अजी, तुम डॉक्टरी करते हो न – देखो तो, मेरे पैर मे क्या हुआ है।" नाग महाशय को उन पॉवो मे किसी भी व्याधि के लक्षण नही दिखे। वे समझ गये कि प्रभु ने उनकी पद-सेवा की कामना को पूरा करने के लिए ही ऐसा किया है।

दुर्गाचरण समझ गये थे कि श्रीरामकृष्ण देव कल्पतरु ईश्वर है। उसी दिन ठाकुर ने अपने शरीर की ओर इंगित करते हुए उनसे पूछा, "इसके बारे मे तुम्हारी क्या राय है?" दुर्गाचरण

ने तत्काल कहा, "आपकी कृपा से मैं जान चुका हूँ कि आप वे ही है।" ठाकुर तत्काल समाधिमग्न हो गये और अपने पादपद्मों को उनके सीने पर रख दिया। सहसा नाग महाशय एक अन्य ही अनुभूति-लोक में पहुँच गये और देखा कि सर्वत्र एक दिव्य ज्योति हिलोरें ले रही है।

एक बार भीषण गर्मी भरी एक दुपहरी में दुर्गाचरण दक्षिणेश्वर गये। ठाकुर भोजन के बाद विश्राम कर रहे थे। नाग महाशय को पंखा थमाकर वे सो गये। पंखा डुलाते डुलाते उनके हाथ दर्द करने लगे, पर बिना आदेश पाये वे भला कैसे रुकते! आखिरकार उनका हाथ इतना थक गया कि पंखा उनसे चलता ही न था; ठीक तभी अन्तर्यामी ठाकुर ने आँखें खोलीं और उनका हाथ पकड़ लिया।

एक दिन दुर्गाचरण ने दक्षिणेश्वर में ठाकुर को कहते सुना, "डॉक्टर, वकील, दलाल – इन्हें ठीक ठीक धर्मलाभ होना कठिन है।" उस दिन घर लौटते ही उन्होंने अपना दवाइयों का बक्सा और चिकित्सा की पुस्तके आदि गंगाजी मे विसर्जित कर दीं। अब वे अपने पिता से स्वेच्छया गृहीत पाल-बाबुओं के लिए वसूली का ही कार्य करते थे और बाद में उसे भी अपने सहयोगी रणजीत को सौंपकर पूर्ण उन्मुक्त हो गये। उनके हृदय में प्रज्वलित त्याग-वैराग्य की अग्नि को देख ठाकुर ने कहा था, "तुम जनक के समान गृहस्थी में ही रहना। तुम्हें देखकर गृही लोग यथार्थ गार्हस्थ-धर्म सीखेंगे।"

एक बार वे अपने गाँव गये। उनका उदासीन भाव देखकर पिता बड़े चिन्तित हो उठे। लौकी के एक बेल के पास एक गाय बँधी हुई थी, जो उसे पाने का बारम्बार प्रयास कर रही थी। नाग महाशय से यह न देखा गया। उन्होने 'खाओ माँ, खाओ' कहते हुए गाय को खोल दिया। पिता ने देखा तो सिर पीट लिया। बोले, "घर का कोई लाभ करना तो दूर, ऐसी हानि क्यो करते हो? डॉक्टरी भी छोड़ दी है, अब क्या खाकर दिन बिताओगे?" पुत्र ने कहा, "प्रभु जो करेंगे, वही होगा।" इस पर पिता ने नाराज होकर कहा, "हाँ, सो तो जानता हूँ। अब तू नंगा हो घूमेगा और मेढक खाकर जीयेगा।" पुत्र ने सुना तो बिना कुछ कहे कपड़े उतार दिये और आँगन से एक मरा हुआ मेढक उठाकर उसे खाते हुए कहा, "लीजिए, आपके दोनों आदेशों का पालन हो गया। अब मै चरण पकड़ कर कहता हूँ – इस आयु में अब आप और सांसारिक चिन्ता मत कीजिए, बैठे बैठे बस भगवान का नाम जपिए।"

गाँव से कोलकाता लौटने के बाद निर्बन्ध दुर्गाचरण का दक्षिणेश्वर आना-जाना और भी बढ़ गया। क्रमशः श्रीरामकृष्ण के अन्य भक्तों के साथ भी उनका परिचय हो गया। तपस्या तथा धनाभाव के चलते धीरे धीरे उन्होंने पादुका त्याग दी। तन ढँकने को केवल एक चादर ही बच गयी। उनका भोजन बेस्वाद और अत्यल्प हुआ करता था। दिन के अन्त में वे बस थोड़ा-सा भात खा लेते थे। जिह्वा-लोलुपता को जीतने हेतु वे अपने भोजन में नमक या चीनी का जरा भी उपयोग नहीं करते थे। एक बार तो अन्न के अभाव में उन्होंने चावल की गीली भूसियाँ खाकर ही दो दिन बिता दिये थे। रिपुओं के दमन-हेतु वे लम्बा उपवास करते थे, यहाँ तक कि ५-६ दिनों तक केवल जल पीकर ही रह जाते। सिरदर्द के कारण अपने जीवन के अन्तिम २० वर्ष उन्होंने स्नान करना छोड़ दिया था, जिसके फलस्वरूप उनकी देह अत्यन्त रूखी दीख पड़ती थी।

इस प्रकार चार वर्ष बीते। श्रीरामकृष्ण के लीलावसान का समय पास आ पहुँचा। उन्हें काशीपुर के उद्यान-भवन मे रखा गया था। उस समय उनकी पीड़ा देखकर दुर्गाचरण का हृदय विदीर्ण हो जाता था, अतः वे वहाँ बहुत कम ही जाते थे। एक दिन जब वे गये, तो ठाकुर के शरीर में असह्य जलन हो रही थी। उन्होंने दुर्गाचरण से कहा, "अजी, इधर आकर मेरे पास बैठो। तुम्हारे ठण्डे शरीर के स्पर्श से मेरा शरीर शीतल होगा।" वे काफी देर तक उनका आलिंगन किये बैठे रहे।

श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के पाँच-छह दिन पूर्व जब वे दक्षिणेश्वर गये, तो सुना कि वे मुँह का स्वाद बिगड़ जाने के कारण आँवला खाना चाहते है। यद्यपि वह आँवले का मौसम नही था, तथापि नाग महाशय जानते थे कि सत्यसंकल्प ठाकुर के मन में जब इच्छा हुई है, तो वह अवश्य कहीं-न-कहीं मिलेगा ही। वे खाना-पीना भूलकर आँवले की खोज करने लगे। आखिरकार तीसरे दिन उन्हें आँवले मिले और वे उन्हें लेकर काशीपुर आ पहुँचे। ठाकुर उन्हें हाथ में लेकर बालक के समान आनन्द व्यक्त करने लगे। इसके बाद ही नाग महाशय ने उनका प्रसादी भोजन ग्रहण किया।

श्रीरामकृष्ण के तिरोभाव के बाद वे इतने शोकाभिभूत हो गये कि कई दिनों तक आहार-निद्रा और यहाँ तक कि शौच-स्नान आदि भी त्यागकर बिस्तर पकड़े रहे। स्वामी विवेकानन्द तथा अन्य गुरुभाइयो को सूचना मिलने पर, वे लोग उनके घर गये और उन्हें समझा-बुझाकर और स्वयं भी खाना-पीना छोड़ देने की धमकी देकर भोजन करने को मजबूर किया।

श्रीरामकृष्ण का आदेश याद करके अब वे अपने गाँव जाकर घर में रहकर पिता की सेवा करने लगे। दीनदयाल का शरीर क्रमशः दुर्बल होता जा रहा था। दुर्गाचरण उन्हें सहारा देकर स्नान-शौच आदि कराते, भोजन कराते और सुन्दर ढंग से उनका बिस्तर लगा देते। पिता के सन्तोषार्थ वे प्रतिवर्ष दुर्गापूजा, कालीपूजा आदि का भी आयोजन करने लगे।

एक बार शुभ योग के समय वे गाँव चले आये थे। पिता ने इस पर खेद व्यक्त करते हुए कहा, "कहाँ तो लोग ऐसे समय स्नान करने गंगा जाते हैं और तू है कि यहाँ आ गया!"

दुर्गाचरण बोले कि विश्वास रहने पर माँ-गंगा स्वयं ही भक्त के घर आ जाती हैं। बड़े आश्चर्य की बात है कि योग के दिन दोपहर के समय उनके आँगन के कोने से बड़े वेगपूर्वक जल निकलने लगा; पूरा आँगन भर गया। लोगों का शोरगुल सुन दुर्गाचरण बाहर निकले और 'माँ पतितपावनी ! माँ भागीरथी !' कहते हुए जल को साष्टांग प्रणाम करते हुए अंजलि से उठा-उठाकर अपने सिर पर डालने लगे। पिता दीनदयाल तथा गाँव के लोग भी उसी जल में स्नान करके तृप्त हुए। जल की वह धारा प्राय: एक घण्टे तक बहती रही थी।

दूसरों की सेवा उन्हें स्वीकार्य नहीं थी। एक बार उनकी पत्नी ने घर के टुटे-फूटे छप्पर की मरम्मत के लिए एक मजदूर को काम पर लगाया। उसे देखते ही नाग महाशय अपना सिर पीटते हुए कहने लगे, "हाय ठाकुर! तुमने क्यों मुझे गृहस्थाश्रम में रखा? मेरे सुख के लिए दूसरे लोग कष्ट झेलें, ऐसा दिन भी मुझे देखना पड़ रहा है।" उनकी अवस्था देख मजदूर छप्पर से नीचे उतर आया। तब नाग महाशय ने उसे अपने हाथ से सजाकर हुक्का पिलाया और पूरी मजदूरी चुकाकर वापस भेज दिया। नाव में सवार होने पर वे मल्लाह को बैठाकर स्वयं ही उसे खेने का काम करते थे।

इस प्रकार सेवा तथा दीनता की प्रतिमूर्ति होते हुए भी, गुरु की निन्दा सुनते ही वे रौद्ररूप धारण कर लेते थे। एक बार गाँव के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति उनके घर आकर श्रीरामकृष्ण की निन्दा करने लगे। नाग महाशय ने सहज भाव से उन्हें मना किया, पर मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों ज्यों दवा की। आखिरकार उन्होंने उस व्यक्ति की पीठ पर जूते लगाते हुए कहा, "निकल जा दुष्ट यहाँ से ! यहाँ बैठकर ठाकुर की निन्दा करता है !" वह व्यक्ति इसका बदला निकालने की धमकी देता हुआ चला गया, पर कुछ दिनों बाद ही उसे अपनी गलती का भान हुआ और उसने आकर नाग महाशय से क्षमा माँगी। बाद में गिरीश बाबू ने इस घटना को सुनकर उनसे पूछा था, "आप तो जूते पहनते ही नहीं, तो फिर आपको जूता मिला कहाँ से?" उत्तर मिला, "तो क्या हुआ? उसी के जूते से उसे मारा था।"

जैसे फूल खिलने पर भौंरे अपने आप ही खिंचे चले आते हैं, वैसे ही एक सन्त के रूप में ख्याति हो जाने से बहुत-से गणमान्य लोग उनके पास आने लगे, पर उन्होंने कभी गुरु का आसन नहीं स्वीकारा। सत्यपरायण नाग महाशय सत्य में ऐसे प्रतिष्ठित हो गये थे कि वे दूसरों को भी सत्यवादी ही समझते थे। दुकानदार जो भी कीमत माँगते, वे बिना मोलभाव उसी कीमत पर चीजें खरीद लेते। अहिंसा में तो वे ऐसे प्रतिष्ठित हो गये थे कि पक्षी आकर निर्भयतापूर्वक उनके हाथों पर बैठ जाते। एक बार उनके आँगन में एक जहरीला साँप निकला। नाग महाशय ने चुटकी बजाते हुए साँप का पथ-प्रदर्शन किया और वह उनका अनुसरण करता हुआ बाहर निकल गया।

आध्यात्मिक सिद्धि

साधना की ही भाँति सिद्धि में भी उनकी बड़ी उच्च अवस्था थी। एक बार सरस्वती-पूजन के दिन वे भावविभोर होकर एक भक्त के साथ देवी-देवताओं की कृपा से सिद्धिलाभ के बार में चर्चा कर रहे थे। भक्त ने सोचा कि शायद इनकी उपलब्धियाँ सगुण के परे निर्गुण तक नहीं पहुँची हैं। तभी नाग महाशय किसी काम से बाहर गये। काफी विलम्ब होने के बाद भक्त ने बाहर आकर देखा कि वे रसोईघर के पीछे आम के पेड़ के नीचे खड़े हैं और भावावेश में बोल रहे हैं, "मेरी माँ क्या घास-मिट्टी (प्रतिमा) तक ही सीमित हैं? वे तो अनन्त सच्चिदानन्दमयी हैं – मेरी माँ तो महाविद्या-स्वरूपिणी हैं।" इतना कहते कहते उनकी बाह्य चेतना लुप्त हो गयी। उनकी यह समाधि लगभग आधे घण्टे के बाद टूटी थी। भक्त का सन्देह मिट गया। यह घटना सुनकर उनकी पत्नी ने बताया, "बेटा, तुम तो उनकी यह अवस्था पहली बार देख रहे हो। कभी कभी तो उनकी चेतना दो-तीन प्रहर तक नहीं लौटती।"

पिता के अन्तिम समय नाग महाशय गाँव में ही थे। पुत्र के अथक प्रयासों से उनके मन से संसारासक्ति दूर हो चुकी थी। वे संध्या-पूजा आदि में मग्न रहते और तुलसी की माला जपा करते। अस्सी वर्ष की आयु में पक्षाघात से उनका देहान्त हो जाने पर उनके अन्तिम संस्कार हेतु नाग महाशय किसी की आर्थिक सहायता ग्रहण करने को राजी नहीं हुए। इसके लिए उन्होंने अपना मकान गिरवी रखकर ऋण लिया और फिर गयाधाम जाकर पिण्डदान भी किया। अपने जीवन के अन्तकाल तक वे इस ऋण को पूरा चुका नहीं सके थे।

पिता के स्वर्गवास के तीन वर्ष बाद ही १८९९ ई. के दिसम्बर में उनके भी महाप्रयाण का समय आ पहुँचा। तब उनकी आयु ५३ वर्ष थी। उदरशूल तथा पेचिश के रोग से वे शय्याग्रस्त हुए, पर दूसरों की सेवा लेना उन्हें गँवारा न था। उन दिनों वे उपनिषद्-गीता आदि का पाठ सुनने में ही मग्न रहते। देहत्याग के दो दिन पूर्व वे पास ही उपस्थित शरच्चन्द्र चक्रवर्ती से बोले, "आपने जिन जिन तीर्थों का दर्शन किया है, उनका नाम एक एक कर लेते चलिए – मैं देखता चलूँ।" शरत् बाबू एक एक करके हरिद्वार, प्रयाग, गंगासागर, काशी, जगन्नाथ-क्षेत्र आदि का नाम लेने लगे और नाग महाशय भावस्थ होकर प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे के समान उन उन तीर्थों का वर्णन करने लगे। इसके साथ ही वे अपनी बाह्य चेतना खोने लगे। २७ दिसम्बर को सुबह नौ बजे से उनका उल्टी साँस चलने लगी। इसके प्राय: घण्टे भर बाद उनकी प्राणवायु निकल गयी और वे महासमाधि में लीन हो गये।

श्रम की महिमा

भैरवदत्त उपाध्याय

संसार में विजय श्रम की होती है। श्रम ही जीतता है। ऐसा कौन सा कार्य है, जो बिना श्रम के सिद्ध हो जाय? कोई भी नहीं। मानसिक कल्पना से कोई कार्य सम्पन्न नहीं होता। मनोरथों से सिद्धि नहीं मिलती। बिना चले मार्ग तय नहीं होता। पका पकाया भोजन सामने होने पर भी मुख तक नहीं पहुँचता और बिना चबाये न तो पेट भरता है और न पचता है। सोते हुए सिंह के मुख में मृग नहीं पहुँचते। उसे श्रम करना पड़ता है। मृगों के पीछे दौड़कर उनका शिकार करना पड़ता है और फिर से उसे मुख से चबाना पड़ता है, तब कहीं उसका पेट भरता है। नाक के नीचे वायु है, पर उसे लेने के लिये श्वास की क्रिया आवश्यक है। हम अपने जीवन का एक क्षण भी बिना कार्य के व्यतीत नहीं कर सकते। निष्क्रिय रहकर नही गुजार सकते। हमें काम करना ही पड़ता है, चाहे वह सार्थक हो या निरर्थक, सायास हो या अनायास, सोद्देश्य हो या निरुद्देश्य। हाथ-पैर चलाना और पलकों को झपकाना अनायास कार्य है। उन्हें करने में किसी प्रकार का सचेतन आयास नहीं किया जाता, वे अनायास हो जाते हैं। उनके सम्पादन में कोई थकान भी नहीं होती। जब कोई कार्य उद्देश्यपूर्ण ढंग से शारीरिक अथवा मानसिक बल को लगाकर किया जाता है, तो वह सायास होता है और शान्तिदायक भी। उसके परिणाम प्रतिक्षत होते है, उनकी अनुकूलता और प्रतिकूलता होने पर सुख-दु:खात्मक भावों की अनुभूति होती है। वे प्रगति, स्थिरता एवं अवनति के आधार बनते हैं।

यो तो श्रम से तात्पर्य शारीरिक श्रम ही होता है, पर समाज ने बौद्धिक श्रम को विशेष महत्व दिया है। जिससे समाज में विसंगतियाँ बढ़ी हैं। शारीरिक श्रम करने वालों को समाज में नीचला दर्जा दिया जाता है। उन्हें वैश्य तथा शूद्र वर्ग में रखा है। श्रम को प्रतिष्ठा न देकर समाज ने बुनियादी भूल की है। जिसका परिणाम श्रम की महत्ता का अवमूल्यन हैं। श्रम के कार्य को हेय दृष्टि से देखने और उससे बचने की प्रवृत्ति हमारे भीतर विकसित हुई है। ऐसे कार्य जिनमे श्रम होता है, उन्हें करने में हम अपनी अप्रतिष्ठा मानते हैं। महापुरुष विद्यासागर जी के जीवन की एक घटना विख्यात् है। वे एक समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में पधारे थे। जिस ट्रेन से वे आये थे, उसी से अन्य युवक भी उसी समारोह में भाग लेने आया था। स्टेशन पर ट्रेन के डिब्बे से उतरने के लिये वह कुली को आवाज दे रहा था। ट्रेन छूटने ही वाली थी, पर युवक को अपना थोड़ा सा सामान ब्रीफकेश उठाने में लज्जा लग रही थी। उसे परेशान देखकर महामना विद्यासागर जी ने अपने आप को कुली बताकर उसका सामान समारोह तक पहुँचाया। उन्ही महाशय विद्यासागर जी का उस समारोह में जब सम्मान किया गया, तब उसे देखकर वह युवक पानी-पानी हो गया। यह अपने आप में एक अकेली घटना नहीं है। हमारे और आसपास के अनगिनत लोगों के साथ ऐसी अनेक घटनाएँ घटती हैं। बड़े होने या बड़े बनने के भ्रम में हम अपने छोटे-छोटे कार्यों को भी स्वयं करना पसन्द नहीं करते, मानो हमारे बड़प्पन का प्रमाण एकमात्र यही हो।

सम्पूर्ण जीव-जगत का भरण-पोषण, विकास एवं वैभव श्रम से होता है। खेतों में लहलहाती फसलें, खेतो का सोना उगलना, नहरों में कल-कल करते नीर का बहना, खदान से लोहा, पत्थर, चूना, कोयला एवं सोना आदि का निकलना, विशाल एवं भव्य सौधों का चमकना, डामर पुती चमचमाती सड़कें, उन पर दौड़ते वाहन, लोहे की पटरियाँ और उन पर दौड़ती ट्रेनें, विशाल पुल और छोटे-बड़े कारखानों के चलने के पीछे श्रम का ही तो जादुई हाथ है। श्रम के संयोग से कला की साधना सार्थक होती है, कला का सौन्दर्य है, मूल्य और जीवन है, उसमे श्रम की आत्मा, प्राण एवं रसायन है। श्रम के निवेश से वस्तु का माधुर्य बनता है, चारुता और रुचिता आती है। मनुष्य के माथे पर झलकते श्रम-बिन्दु सच्चे मोतियों से अधिक मूल्यवान और आकर्षक होते हैं। श्रम-सीकरों से शोभित भाल, अभिवन्दनीय और अभिनन्दनीय हैं।

मनुष्य जन्म के साथ कुछ लेकर नहीं आता, केवल श्रम ही है जो उसे शरीर के साथ मिलता है। दो भुजाएँ उसके पौरुष के प्रतीक हैं। श्रम के मानदण्ड हैं। वह पूँजी है, जो हर दशा में उसके साथ रहती है और विषम-से-त्रिषम परिस्थितियों से उबार लेती है। वह सच्चा मित्र है, जो कभी धोखा नही देता। वह ऐसा गुण है, जिसे देखकर सभी मुग्ध हो जाते हैं। लक्ष्मी तो उसकी दासी बन जाती है – **पुरुष जो उद्यमी लक्ष्मी ताकी चेरी**। निकम्मा और आलसी धनार्जन नहीं करता। मनोरथो को मूर्तरूप नहीं दे सकता। बाप-दादो की संचित पूँजी भी उससे तलाक लेकर चली जाती है। परिश्रमी भाग्यवादी नहीं होता, वह तो पुरुषार्थवादी होता है। अपनी दो भुजाओं के बल पर जिसे विश्वास है, वह किसी का मुखापेक्षा नहीं बनेगा, किसी का नहीं। ऐसा व्यक्ति ही आत्मसम्मानी होता है। परिश्रम ही आत्मसम्मान का कवच होता है। आत्मविश्वास इसका सहचारी है, जो उन्नति के मार्ग का सर्वोत्तम पाथेय है। स्वावलम्बन का मुकुट श्रम के सिर पर बँधता है। परिश्रमी स्वावलम्बी होता है। जहाँ परिश्रम है, वही ईमानदारी, सत्य तथा अहिंसा के उदात्तभाव विराजमान होते हैं। बिना परिश्रम के खानेवाला व्यक्ति परजीवी है। वह समाज के हरे वृक्ष को

सुखा देता है और अन्त में स्वयं भी सुखकर नष्ट हो जाता है। वह समाज पर बोझ है। चोर, अपराधी और पापी है।

आज वैज्ञानिक आविष्कारों की प्रतियोगिता श्रम से है। वे मानव जीवन से श्रम को निकालना चाहते हैं। वे हर कार्य से उसके परिश्रम को बचाने में तत्पर हैं। ज्यों ज्यों श्रम की बचत हो रही है, त्यों त्यों मानव जीवन में विलासिता का पदार्पण हो रहा है, जिससे जीवन में स्पन्दन जिजीविषा, गति, संघर्षशीलता और सामाजिकता का ह्रास हो रहा है। जीवन रोगों से आक्रान्त होता है। कुण्ठाएँ घर करती हैं और उत्पादकता घटती है, जिससे मानव के मूल्य में गिरावट आती है। आज मानव से मशीनो का मूल्य अधिक है। उनसे लगाव ज्यादा है।

श्रम केवल निर्जीव वस्तु का उत्पादन नहीं करता और वह मात्र उनके रूप में परिवर्तन कर उन्हें उपयोगी नहीं बनाता, अपितु समाज की भी संरचना करता है। समाज में अन्त:क्रिया को तीव्रतर कर गतिशील बनाता है। व्यक्ति-से-व्यक्ति को और समुदाय-से-समुदाय को जोड़ता है। सामाजिक विकास में महती भूमिका का निर्वाह करता है। समाज में व्यक्तियों के बीच जो सम्बन्ध एवं पारस्परिक जुड़ाव है, उसका आधार श्रम है। वह एक सेतु है, जिस पर सामाजिक इकाइयाँ एक दूसरे के पास पहुँचती हैं। मनुष्य श्रमशील प्राणी है। श्रम की प्रेरणायें जीवन को परिचालित करती हैं। श्रम के कारण ही साहित्य एवं कलाओं का जन्म होता है, संस्कृति का विकास होता है। समाज में जब श्रम घटता है, मानवीय श्रम का स्थान यन्त्र लेते हैं, तब समाज टूटता है और साहित्य, कला तथा सांस्कृतिक मूल्यों का अवमूल्यन और सृजन अवरुद्ध होता है, घटिया होता है। अब प्रात:काल घरों में चक्की चलाती महिलाओं के कण्ठों से स्वर नही फूटते, पनघट पर पनिहारिनों की अठखेलियाँ नही होती, कोई प्यासा पथिक किसी गोरी को देखकर नहीं अटकता और कोई कृष्ण किसी राधा की मटकी नही फोड़ता। मशीनो के कुहराम में श्रमिकों की हुंकारे दब चुकी है। अब लोक-गीत और लोक-कथाएँ विलुप्त हैं। सांस्कृतिक मूल्यों की सृष्टि अवरुद्ध है। श्रमिक संस्कृति सृजनशील होती है, उत्पादन करती है। श्रम के अभाव मे उपभोक्ता संस्कृति का विकास होता है, जिससे समूचा समाज विघटन की ओर अग्रसर होता है।

मानव संस्कृति श्रम संस्कृति है। श्रम का अर्थ कर्म है, जो मनुष्य का लक्षण है – **मनुष्या: कर्मलक्षणा:।**

क्या मनुष्य बिना श्रम के अपने मस्तिष्क की कल्पना साकार कर सकता है? उसके जीवन से क्या श्रम नि:शेष हो सकता है? कदापि नही, क्योंकि श्रम सत्य है। अत: श्रम का जयघोष सृष्टि के अन्त तक रहेगा। उसकी विजय सदैव होगी। ❑❑❑

अनमोल बोल

* प्रार्थना में विश्वासी व्यक्ति निराश नहीं होता, क्योंकि वह जानता है कि काल तो उस महा आयोजक ईश्वर के हाथ है और वह हर चीज अपने सही समय पर करता है। इसलिए प्रार्थना में विश्वासी व्यक्ति हमेशा विश्वास और धैर्य के साथ प्रतीक्षा करता रहता है।

* ताजा मन शरीर को ताजा रखता है। अपने मन में आज का विचार भर लो। आनेवाले कल के लिए सोचने को तब तक पर्याप्त समय मिलेगा, जब तक कि वह आज नही बन जाता।

* यदि हम जीवन के दु:ख-कष्टों को सही मनोभाव से ग्रहण करें, तो वे संगमरमर पर शिल्पी के हथौड़े की चोटो के समान हमें अधिक अच्छा रूप प्रदान करेंगे तथा अमरत्व के मन्दिर को सुशोभित करने के लिए हमें अधिक योग्य बनायेंगे।
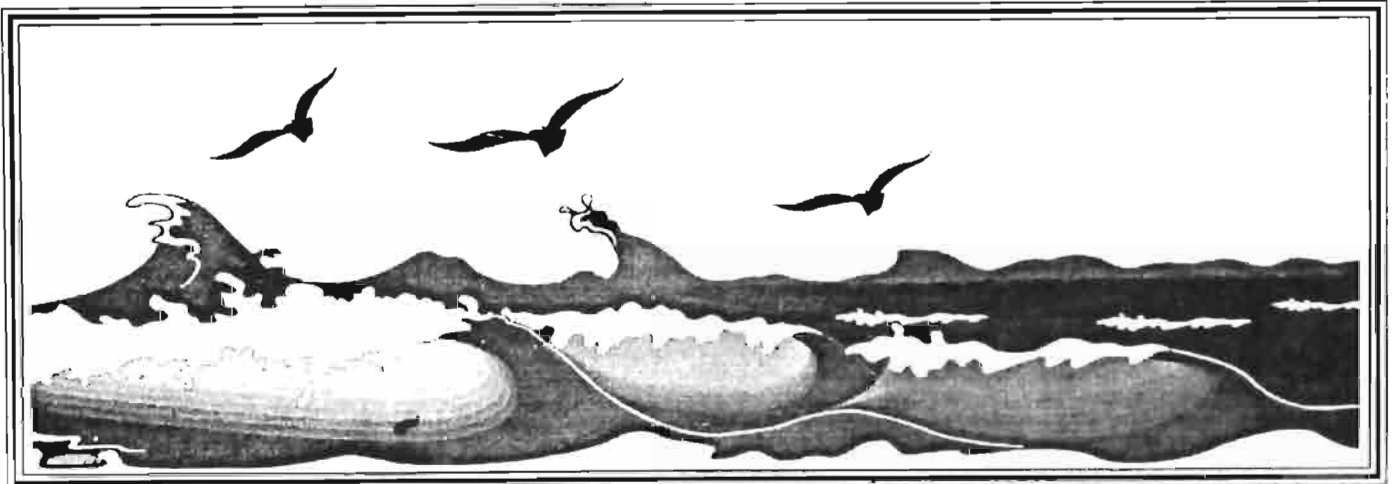
आध्यात्मिक-प्रश्नोत्तरी

(विवेक-ज्योति के प्रारम्भिक वर्षों में प्रकाशित पाठकों के प्रश्न तथा तत्कालीन सम्पादक ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी के उत्तर। – सं.)

४७. प्रश्न – हिन्दू धर्म का आक्रामक न होना ही क्या उसके पतन का कारण नहीं है?

उत्तर – नहीं, उसके पतन के अन्य कारण हैं। आक्रामक होने से धर्म फूलते-फलते नहीं। भले ही आज की परिस्थिति में ऐसा लगे कि जो धर्म आक्रामक हैं वे फैल रहे हैं; तथापि वस्तुस्थिति वैसी नहीं है। आक्रामक धर्म प्रलोभन और भय के बल पर ही विस्तार-लाभ करते हैं। उनका सम्बन्ध मनुष्य की बुद्धि और विवेक से नहीं होता। यही कारण है कि ज्यों ज्यों मनुष्य का चिन्तन सूक्ष्म होता है, वह परम्परागत आक्रामक धर्म को अपने अनुकूल नहीं पाता।

विश्लेषण करके देखें – वर्तमान पतनावस्था के बावजूद हिन्दू धर्म आज तक कैसे खड़ा रह पाया है। बिना प्रलोभन या भय दिखाये भी पिछले करीब दस हजार वर्ष से उसकी प्राणदायी विचारधारा प्रवाहित हो रही है। इसका कारण क्या है? उसकी ऐसी अक्षुण्ण शक्ति का उत्स कहाँ है?

एक बात और। इतिहास बतलाता है कि प्रलोभन या भय के आधार पर ही आक्रामक धर्मों का विस्तार होता रहा है। ऐसी घटनाएँ अत्यन्त विरल हैं जबकि अन्य धर्मावलम्बियों ने, या विशेषकर हिन्दुओं ने, इसलिए धर्म-परिवर्तन किया हो कि वे उस धर्मविशेष से आध्यात्मिक तृप्ति प्राप्त करते हों। धर्म-परिवर्तन का कारण सदैव या तो प्रलोभन रहा है या फिर तलवार। दूसरी ओर, स्वेच्छया हिन्दू धर्म को अंगीकार करनेवाले अन्य धर्मावलम्बियों की संख्या नगण्य नहीं है।

इसका क्या कारण है? यही कि हिन्दू धर्म की अपील सार्वभौमिक और सार्वकालिक है। इसलिए हम हिन्दू धर्म को सनातन धर्म कहते हैं। वह मानव की आत्मा पर आधारित होने के कारण, आत्मा की ही भाँति अनन्त एवं शाश्वत है और मानव मात्र के लिए उपादेय है। इस सनातन धर्म का आशय 'योग' और 'वेदान्त' शब्दों से प्रकट होता है। यदि 'योग' और 'वेदान्त' की सही जानकारी लोगों के सामने रखी जाय, तो अन्य धर्मावलम्बी भी इसे अपने लिए ग्राह्य मानते है।

हिन्दू धर्म के पतन का कारण यह हुआ कि यह अनगिनत सम्प्रदायों में बँट गया और ये सम्प्रदाय परस्पर एक-दूसरे का ही विरोध करने लग गये। जब तक हिन्दू धर्म पुनः योग और वेदान्त की पीठिका पर प्रतिष्ठित नहीं होता है, तब तक उसमें क्रियाशीलता एवं गति नहीं आ पाएगी। विभिन्न प्रकार के क्रिया-अनुष्ठान प्रारम्भिक स्थिति में भले ही मनुष्य को कुछ सहायता प्रदान करते हों, पर यदि उन पर जोर दिया गया तो वे बुद्धि को कुण्ठित कर देते हैं और विचार-शक्ति एक तंग दायरे में बँधकर कट्टर और तअस्सुबी हो जाती है। इसी से आक्रामक धर्मों का जन्म होता है। आक्रामक धर्मों का वास्तविक उद्देश्य आध्यात्मिक समाधान की अपेक्षा राजनैतिक ही अधिक होता है।

हिन्दू धर्म पुनः उठेगा और उठ रहा है। जितनी तीव्रता से उसके उदात्त विचारों को फैलाने की कोशिश की जायेगी, उतना ही वह सबल और पुष्ट होगा। इसी में मानवमात्र का हित निहित है। हिन्दू धर्म भी यदि प्रचलित अर्थों में आक्रामक हो गया, तो संसार में 'धर्म' नाम की चीज ही नही रह जायेगी। पर यहाँ स्मरणीय है कि 'आक्रामक होना' और 'आक्रमण का सामना करना' – दोनों एक या समानार्थी नहीं हैं। हिन्दू धर्म आक्रामक तो न हो, पर आक्रमण का अवश्य सामना करे। यह सही है कि आज हिन्दू धर्म में आक्रमण का सामना करने की शक्ति क्षीण हो गई है। स्वस्थ दृष्टिकोण इस शक्ति को पुनः बढ़ायेगा।

४८. प्रश्न – मुझे साधना में कोई प्रगति नहीं दिखाई देती। अतएव साधना करने की इच्छा भी नहीं होती। मुझे क्या करना चाहिए?

उत्तर – साधना के क्षेत्र में शीघ्र ही उल्लेखनीय प्रगति का अनुभव नहीं होता, क्योंकि साधना का सम्बन्ध मन के संस्कारों को बदलने से होता है। मन के संस्कारों में अभ्यास के द्वारा परिवर्तन तो होता है, पर इस परिवर्तन का बोध आगे चलकर ही हो पाता है। अतः साधना का अभ्यास करना न छोड़ें। अध्यात्म के रास्ते में यह एक बड़ा विघ्न है कि मन किसी-न-किसी बहाने साधना से छुटकारा पाना चाहता है। हम मन पर नियंत्रण के अभ्यास को शिथिल न करें। अभ्यास की इच्छा न हो तो भी वाचन, मनन इत्यादि में मन को नियमित रूप से लगाने का प्रयत्न करें।

श्रीमत् स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज नवजात बछड़े का दृष्टान्त देकर कहा करते थे कि बछड़ा जन्म के थोड़ी ही देर बाद अपने पैरों पर खड़ा होने का यत्न करता है, पर वह गिर जाता है। बछड़ा बारम्बार खड़ा होने की चेष्टा करता है और बारम्बार गिर पड़ता है – १५ मिनट, आधा घण्टा, एक घण्टा; जब तक वह उठकर खड़ा नहीं हो जाता तब तक उसका प्रयत्न जारी रहता है। और कुछ समय बाद तो वह न केवल खड़ा हो जाता है, बल्कि कुलाँचे भी भरने लगता है। आध्यात्मिक जीवन मे भी ऐसा ही होता है। एक निश्चय हमने किया कि हम इतनी देर तक ध्यान करेंगे। प्रमाद आकर हमें दबोच लेता है और कहता है, "आज भर ध्यान न किया तो कौन-सा हर्ज हो जाएगा?" या फिर हम मन की चंचलता और विकार के शिकार हो जाते हैं और हमारा निश्चय कपूर की भाँति उड़ जाता है। पर यदि हम गिरे भी तो पुन: उठ खड़े होना चाहिए। अध्यवसायपूर्वक लगे रहें। मन-ही-मन प्रतिज्ञा करें, "इस बार और भी अच्छा करूँगा।" सम्भव है कई बार गिरना पड़े, लक्ष्यच्युत होना पड़े, पर अभ्यास न छोड़ें। आध्यात्मिक जीवन में जब तक प्रयास चलता है तब असफलता की कोई बात नहीं है। यही आगे बढ़ने का रास्ता है।

४९. प्रश्न – आपने बम्बई में अपने एक भाषण में कहा था कि धर्म भी पूरी तरह वैज्ञानिक है। तो क्या धर्म के प्रयोग भी विज्ञान के समान सिद्ध किये जा सकते हैं?

उत्तर – हाँ, धर्म भी एक विज्ञान है। धर्म का प्रयोग सर्वसाधारण के लिए कठिन इसलिए हो जाता है कि इसमें मन ही प्रयोग का औजार है और प्रयोग की वस्तु भी। पर यदि व्यक्ति लगन के साथ इस प्रयोग में किसी कुशल पथ-प्रदर्शक के नेतृत्व में जूझ जाए, तो विज्ञान के प्रयोग के समान यह प्रयोग भी सिद्ध हो जाता है।

५०. प्रश्न – भारतीय दर्शन और विशेषकर वेदान्त, कहता है कि एकमात्र ईश्वर ही सत्य है और इन्द्रियों के माध्यम से हम जिस जगत को देखते हैं वह मिथ्या है। पहले तो यही विश्वास करना कठिन है कि ईश्वर का अस्तित्व है। फिर यह कैसे विश्वास किया जाए कि एकमात्र ईश्वर ही सत्य है? वेदान्त के इस उक्ति की क्या कोई युक्तिसंगत वैज्ञानिक भूमिका है?

उत्तर – आपकी कठिनाई उचित है। जब तक हमारे लिए यह इन्द्रियग्राह्य जगत् सत्य है तब तक ईश्वर की प्रतीति नहीं हो पाती। परन्तु जीवन में ऐसे भी अवसर आते हैं जब हमें जीवन की असारता मालूम होने लगती है। हम संसार में सब कुछ पकड़कर रखना चाहते हैं पर मुट्ठी में बँधे जल की तरह सब कुछ हमारी पकड़ से निकलकर बह जाता है। ऐसे अवसरों पर हमें संसार के मिथ्यात्व का बोध होता है और हमारा अन्त:करण ईश्वर की ओर झुकता है।

पता नहीं कि आपकी उम्र कितनी है, पर प्रश्न को देखकर यह लगता है कि अभी आपमें यौवन का उत्साह भरा हुआ है। भगवान करे, दीर्घकाल तक यह उत्साह आपमें बना रहे। किन्तु कालक्रम से जब शरीर और इन्द्रियों पर बुढ़ापा उतरता है तथा मन शिथिलता के द्वारा आक्रान्त होता है, तब संसार पहले जैसा सुनहला नहीं दिखाई देता। जवानी की उमंग हमारी बाहरी और भीतरी आँखों पर जो परदा डाल देती है, वह वय के भार से झीना हो जाता है और संसार का एक भिन्न, अपरिचित रूप हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। तब हमें प्रतीत होने लगता है कि संसार मिथ्या है और कोई ऐसी सत्ता है जो सर्वनियामक शक्ति के रूप में अनुस्यूत होकर स्थित है। तब हमें लगता है कि हम बलात् किसी अदृश्य शक्ति द्वारा नियंत्रित हो रहे हैं। तब, और केवल तभी, हमें ईश्वर की आवश्यकता महसूस होती है।

अत: आज कोई भी तर्क आपको जगत् का मिथ्यात्व नहीं समझा सकेगा, और न वह ईश्वर के अस्तित्व का प्रमाण ही दे सकेगा। काल ही गुरु है। वही हमे यथोचित शिक्षा प्रदान करता है। समय आने पर ही आप इस तथ्य को समझ सकेंगे।

रही वैज्ञानिक भूमिका की बात। तो, उत्तर में यह कहा जा सकता है कि कतिपय वैज्ञानिक, जिनमें आइंस्टीन, जेम्स जीन्स, एडिंगटन के नाम उल्लेखनीय है, यह स्वीकार कर रहे हैं कि एक अतीन्द्रिय, परम बौद्धिक सत्ता इस विश्व का नियमन कर रही है। आइंस्टीन के अनुसार उस सत्ता का बोध तर्क या गणित के समीकरणों के माध्यम से नहीं, बल्कि प्रज्ञा (intuitional flight) के द्वारा होता है। आप लिंकन बारनेट द्वारा लिखी 'दि यूनिवर्स एण्ड डॉ. आइंस्टीन' नामक पुस्तक पढ़ लें तो इस दिशा मे कुछ नया प्रकाश मिलेगा।

❖ (क्रमश:) ❖

श्री सदानन्द योगीन्द्र कृत
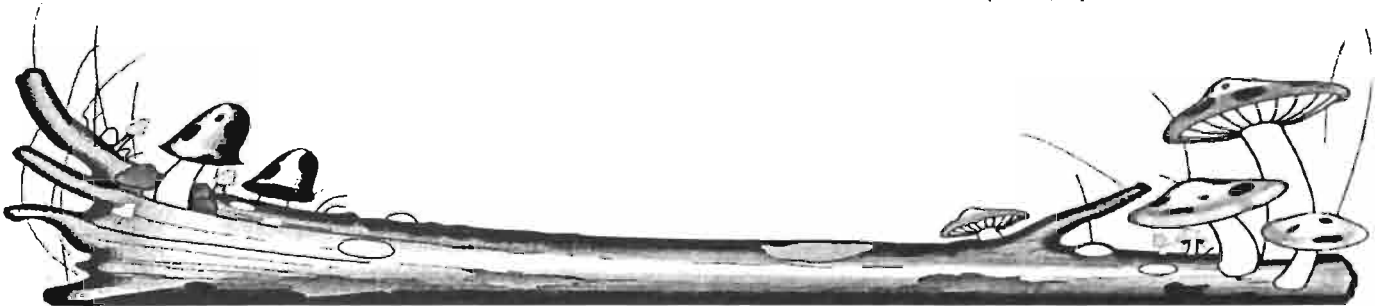
वेदान्त-सार (९)

'अहं ब्रह्मास्मि' का अर्थ

अथ अधुना 'अहं ब्रह्मास्मि' (बृ. उ. १/४/१०) इति अनुभव-वाक्यार्थो वर्ण्यते ।।१७०।।

– अब 'अहं ब्रह्मास्मि' (मै ब्रह्म हूँ) – इस अनुभव-वाक्य का अर्थ कहा जाता है।

एवम् आचार्येण अध्यारोप-अपवाद-पुरःसरं तत्-त्वम्-पदार्थौ शोधयित्वा वाक्येन अखण्डार्थे अवबोधिते अधिकारिणः अहं नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-सत्य-स्वभाव-परमानन्द-अनन्त-अद्वयं ब्रह्म अस्मि इति अखण्ड-आकार-आकारिता चित्तवृत्तिः उदेति ।।१७१।।

– उपरोक्त रीति से जब आचार्य अधिकारी शिष्य को अध्यारोप तथा अपवाद के माध्यम से 'तत्' तथा 'त्वम्' पदों के अर्थों का शोधन कराकर, उस वाक्य के द्वारा उसके 'अखण्ड' रूप तात्पर्य का बोध करा देते हैं, तब उस (शिष्य) में – 'मै नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य-स्वभाव, परमानन्द, अनन्त, अद्वय ब्रह्म हूँ' – ऐसी अखण्ड (ब्रह्म) रूप से बनी हुई चित्तवृत्ति का उदय होता है।

सा तु चित्-प्रतिबिम्ब-सहिता सती प्रत्यग्-अभिन्नम्-अज्ञातं परं-ब्रह्म विषयीकृत्य तद्गत अज्ञानम् एव बाधते। तदा पटकारण-तन्तुदाहे पटदाहवत् अखिल-कारणे अज्ञाने बाधिते सति तत्कार्यस्य अखिलस्य बाधितत्वात् तदन्तर्भूत अखण्ड-आकार-आकारिता चित्तवृत्तिः अपि बाधिता भवति ।।१७२।।

– (जब) वह (अखण्डाकार चित्तवृत्ति) (शुद्ध) चैतन्य के प्रतिबिम्ब से युक्त (आलोकित) होकर अन्तरात्मा से अभिन्न, अज्ञात परब्रह्म को विषय बनाकर उसमें निहित अज्ञान को नष्ट करती है, तब जैसे वस्त्र के कारण-रूप धागे के जल जाने पर (उससे बना) वस्त्र भी जल जाता है, वैसे ही अज्ञान का नाश हो जाने पर उसके समस्त कार्य (संसार) भी नष्ट हो जाते हैं, अतः उसके अन्तर्भूत अखण्डाकार-आकारित चित्तवृत्ति भी बाधित (नष्ट) हो जाती है।

तत्र (वृत्तौ) प्रतिबिम्बितं चैतन्यम् अपि यथा (प्र)दीप-प्रभा आदित्य-प्रभा-अवभासन-असमर्था सती तया अभिभूता भवति तथा स्वयम्-प्रकाशमान-प्रत्यग्-अभिन्न-परब्रह्म-अवभासन-अनर्हतया तेन अभिभूतं सत् स्वोपाधि-भूत-अखण्ड-वृत्तेः बाधितत्वात् दर्पण अभावे मुख-प्रतिबिम्बस्य मुखमात्रत्ववत् प्रत्यग्-अभिन्न-परब्रह्म-मात्रं भवति ।।१७३।।

– जिस प्रकार एक दीपक का आलोक सूर्य की प्रभा को आलोकित करने में असमर्थ होकर (स्वयं ही) उससे अभिभूत हो जाता है, उसी प्रकार वहाँ (अखण्ड-आकार-आकारित वृत्ति में) प्रतिबिम्बित चैतन्य भी स्वयं-प्रकाशमान अन्तरात्मा से अभिन्न परब्रह्म को आलोकित करने में असमर्थ होने के कारण उससे अभिभूत होकर, अपनी उपाधिभूत अखण्ड वृत्ति के नष्ट हो जाने पर, दर्पण के अभाव में मुख का प्रतिबिम्ब मुखमात्र में ही रह जाने के समान प्रत्यक् (अन्तरात्मा) से अभिन्न, परब्रह्म मात्र ही रह जाता है।

एवं च सति 'मनसा एव अनुद्रष्टव्यं' (बृ. उ. ४/४/१९) 'यन्-मनसा न मनुते' (के. उ. १/५) इति अनयोः श्रुत्योः अविरोधो, वृत्ति-व्याप्यत्व-अङ्गीकारेण फल-व्याप्यत्व-प्रतिषेध-प्रतिपादनात् ।।१७४।।

– ऐसी अवस्था में 'यह केवल मन के द्वारा देखे जाने योग्य है' – एवं 'जिसका मन के द्वारा चिन्तन नही किया जा सकता' – इन दोनो श्रुतियो में कोई विरोध नही है, क्योंकि यहाँ (अखण्डाकार वृत्ति में) उसके फल (प्रतिबिम्बित चैतन्य) की व्याप्ति का निषेध करके चित्तवृत्ति के (द्वारा) व्याप्त होना स्वीकार किया गया है।

तदुक्तं – 'फलव्याप्यत्वम्-एव-अस्य शास्त्रकृद्भिः निवारितम्। ब्रह्मणि अज्ञान-नाशाय वृत्तिव्याप्तिः अपेक्षिता ।।' इति ।। (पंचदशी ६/९०) ।।१७५।।

– कहा भी गया है – 'शास्त्रकारो ने फल (वृत्ति में प्रतिबिम्बित चैतन्य) द्वारा व्याप्तता (प्रकाश्यता) का निषेध किया है। (परन्तु वे स्वीकार करते हैं कि) ब्रह्म के अज्ञाननाश हेतु ही चित्तवृत्ति के व्याप्तता की आवश्यकता है।'

'स्वयम्-प्रकाशमानत्वात् न आभास उपयुज्यते।' इति च। (पंचदशी ६/९२) ।।१७६।।

– 'स्वयंप्रकाश होने के कारण उस (परब्रह्म) को प्रकाशित होने के लिए चैतन्य-प्रभा (प्रकाश) की कोई जरूरत नहीं होती।'

जडपदार्थ-आकार-आकारित-चित्तवृत्तेः विशेषो अस्ति ।।१७७।।

– परन्तु यह (अखण्डाकार-आकारित ब्रह्म विषयक चित्तवृत्ति) का जड़ पदार्थों के आकार मे बनी चित्तवृत्तियों से भिन्न है।

तथा हि। अयं घट इति घटाकार-आकारित-चित्तवृत्तिः अज्ञातं घटं विषयीकृत्य तद्गत-अज्ञान-निरसन-पुरःसरं स्वगत-चिदाभासेन जडं घटम् अपि भासयति ।।१७८।।

– उदाहरणार्थ – 'यह घड़ा है' – इस बोध में घट के आकार में उत्पन्न चित्तवृत्ति, अज्ञात घट को विषय करके उस घट विषयक अज्ञान का नाश करती हुई, अपने चिदाभास (प्रतिबिम्बित चैतन्य) के द्वारा घट रूपी जड़ पदार्थ को प्रकाशित भी करती है।

तदुक्तं - 'बुद्धितत्स्थ-चिदाभासौ द्वौ अपि व्याप्नुतो घटम्। तत्र अज्ञानं धिया नश्येद्-आभासेन घटः स्फुरेत्।।' इति (पंचदशी ७/९१) ।।१७९।।

– कहा भी है – 'बुद्धिवृत्ति तथा उसमें स्थित (प्रतिबिम्बित) चैतन्य का आभास दोनों ही घट के सम्पर्क में आते है (उसे व्याप्त करते हैं)। इनमें बुद्धिवृत्ति (घट विषयक) अज्ञान का नाश करती है और उसमें स्थित (प्रतिबिम्बित) चैतन्य से घट का प्रकाशन होता है।'

यथा दीप-प्रभा-मण्डलम् अन्धकार-गतं घट-पट-आदिकं विषयीकृत्य तद्गत-अन्धकार-निरसन-पुरःसरं स्वप्रभया तद्-अपि भासयति इति ।।१८०।।

– ठीक उसी प्रकार, जैसे कि दीपक का प्रकाश, अन्धकार में स्थित (आच्छन्न) घट, पट आदि विषयों के ऊपर छाये अन्धकार का निराकरण करते हुए अपने आलोक से उन्हें भी उद्भासित (आलोकित) करता है।

❖ (क्रमशः) ❖

उत्तम स्वास्थ्य के उपाय (७)

❑ भोजन करने से एक घण्टा पूर्व एक गिलास पानी पीना चाहिये। भोजन के साथ साथ पानी पीना ठीक नहीं। भोजन हो जाने के आधे घण्टे बाद थोड़ा पानी और दो घण्टे बाद एक या दो गिलास पानी पीया जा सकता है।

❑ रात का भोजन हल्का हो, आहार-तालिका में रोटी, चावल और सब्जी हो। पानी ऊपर बताई गयी विधि से पीना है। पूरे दिन भर में हर व्यक्ति को लगभग तीन लीटर पानी पीना चाहिये।

❑ दोपहर और रात के समय भोजन के बाद तत्काल नहीं सोना चाहिये। कम-से-कम आधा घण्टा धीरे धीरे टहलने या वज्रासन करने से पाचन ठीक होगा और विश्राम का उचित लाभ मिलेगा।

❑ दोपहर में नींद की आवश्यकता आयु पर निर्भर करती है। दस वर्ष के कम और पैंसठ वर्ष से अधिक आयु के लोगों के लिये दोपहर में सोना अनिवार्य है। परन्तु एक घण्टे से अधिक सोना उचित नहीं।

❑ दोपहर की निद्रा को एक से तीन बजे के दौरान ही सीमित रखना ठीक है। तीन बजे के पश्चात् सोना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। इससे रात में नींद आने में विलम्ब होने से, सुबह जल्दी उठना सम्भव नहीं होगा। दोपहर के बाद नींद से जागने पर आँखों पर पानी के छींटे डालकर उन्हें अच्छी तरह धोना चाहिये।

❑ युवक एवं युवतियों के लिये दोपहर में सोना उचित नहीं। यह उनके स्वास्थ्य के लिये अहितकर है।

❑ नाक के एक छिद्र को बाँयें हाथ के अंगूठे से दबाकर दूसरे छिद्र से पानी भीतर खीचिए, फिर दूसरे छिद्र से पानी बाहर निकालिए।

❑ इस प्रकार दोनों नासिका-छिद्रों से बारम्बार पानी खींचने और निकालने का अभ्यास हो जाने से नेत्रों की शक्ति स्वच्छ होगी, साइनस की समस्या दूर होगी, स्मरण-शक्ति बढ़ेगी, थकान घटेगी और क्रोध भी कम होगा।

❑ शाम का नाश्ता चार से पाँच बजे के दौरान होना चाहिये। बच्चों के लिए हल्का नाश्ता ही हितकर है।

❑ शाम के नाश्ते में दूध, दूध-साबूदाना, हलुआ, रोटी, दूध-रोटी, दूध-लाई, मुरमुरा, चिउड़ा, भीगे या उबले चने, भीगे मूँग की दाल आदि लेना अच्छा है।

❑ फलाहार दिन में तीन-साढ़े तीन बजे के बाद न करें तो उत्तम। मौसम के अनुसार उपलब्ध फल ही लेना ठीक है, यथा – आम, कटहल, अमरूद, सन्तरा, मौसम्बी, नारियल, अनार, अनानास, नाशपाती, अंगूर आदि।

❑ सेव, अंगूर, काजू, किसमिस, बादाम आदि महँगे होते हैं। उनके स्थान पर सस्ते, परन्तु उन्हीं के समान गुणों से सम्पन्न अमरूद, बेर, खजूर, मूँगफली आदि फल लिये जा सकते हैं।

❑ कम आयु के बालक-बालिकाओं के लिए खट्टे फल भी गुणकारी होते हैं।

❖ (क्रमशः) ❖

वृन्दावन के सेवाश्रम में नये विभाग

विगत ७ अप्रैल को रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के महासचिव श्रीमत् स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज ने वृन्दावन के रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम में ३० शय्याओं से युक्त नवनिर्मित प्रसूतिगृह का उद्घाटन किया। इसी दिन उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री श्यामल कुमार सेन ने नवनिर्मित दन्त-चिकित्सा विभाग का उद्घाटन किया। इस उपलक्ष्य में आयोजित सभा में ३०० से भी अधिक आगन्तुकों ने भाग लिया और स्वामी स्मरणानन्द जी, स्वामी सुहितानन्द जी और आगरा मेडिकल कॉलेज की अध्यक्षा डॉ. वीणा शर्मा के व्याख्यान सुने।

कटिहार (बिहार) के रामकृष्ण मिशन में विद्यामन्दिर की स्वर्ण जयन्ती तथा श्रीरामकृष्ण का जन्मोत्सव

पिछले वर्ष बिहार के कटिहार जिले में स्थित रामकृष्ण मिशन विद्या-मन्दिर ने अपना स्वर्ण जयन्ती समारोह सम्पन्न हुआ। सन् १९२५ ई. में बेलूड़ मठ के सचालकों ने कटिहार, पूर्णिया और अररिया अचल में राहत-कार्य चलाने स्वामी महादेवानन्द जी को वहाँ भेजा था। उन्हीं के उत्साह तथा प्रेरणा से सुरेन्द्र नाथ साह के नेतृत्व में भक्तों के एक दल ने सन् १९२६ में बड़े सीधे-सादे ढंग से कटिहार में आश्रम का शुभारम्भ किया। उस समय एक छोटे-से मन्दिर में धर्मचर्चा और साथ ही स्थानीय रोगियों के लिए साधारण-सी सेवा-सुश्रूषा की व्यवस्था हुई थी। क्रमशः आश्रम की गतिविधियों में विस्तार और आश्रम की सुव्यवस्था होने लगी। श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग शिष्य स्वामी शिवानन्द जी महाराज की शुभेच्छा एव शुभाशीर्वाद से सन् १९३१ में कटिहार आश्रम रामकृष्ण मठ और मिशन की एक शाखा के रूप में स्वीकृत हो गया। आश्रम ने सन् १९४७ में देश-विभाजन के कुछ दिनों बाद बाहर से विस्थापित होकर आये लोगों के लिये यथाशक्ति खाने-पीने और चिकित्सा आदि की व्यवस्था की। परवर्ती काल में उनके बच्चों की शिक्षा की दृष्टि से ही वर्तमान विद्या-मन्दिर का श्रीगणेश हुआ। सन् १९५१ में बुद्ध-पूर्णिमा के दिन उन्मुक्त प्राकृतिक परिवेश में मात्र सात बच्चों को लेकर शिक्षा-दान का महायज्ञ प्रारम्भ हुआ। सम्प्रति इस विद्यालय में लगभग १,७०० विद्यार्थी हैं। यह विद्यालय विभिन्न प्रकार से सुविकसित हुआ है। इस विद्यालय में पहले केवल बगला-माध्यम से ही पढ़ाई होती थी, परन्तु बाद में इसमें अंग्रेजी-माध्यम से भी शिक्षा दी जाने लगी। बाद में इसमें किन्डर गार्टन विभाग भी आरम्भ हुआ। फिर छात्रावास की भी स्थापना की गई। उस अंचल के शिक्षा-जगत् में कटिहार के रामकृष्ण मिशन विद्या-मन्दिर का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा-सेवा के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी यह आश्रम विभिन्न समय पर तरह तरह के राहत-कार्य करता आया है और नियमित रूप से दातव्य चिकित्सालय और निःशुल्क शिक्षा-केन्द्र (Free Coaching Centre) भी संचालित कर रहा है।

विद्यालय के ५० वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में १२ जनवरी २००१ को स्वामी विवेकानन्द जी के जन्मदिन पर रामकृष्ण मठ व मिशन के वरिष्ठ उपाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी गहनानन्द जी महाराज ने दीप जलाकर और पचास गैस-बैलून आकाश में उडाकर 'स्वर्ण जयन्ती समारोह' का उद्घाटन किया। समापन-समारोह २० दिसम्बर २००१ को रामकृष्ण मठ के मिशन के उपाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज की शुभ उपस्थिति में हुआ। इस अवसर पर तीन दिनों तक विभिन्न प्रकार के सास्कृतिक कार्यक्रम और व्याख्यानों का आयोजन हुआ था।

इस वर्ष १६ मार्च २००२ को श्रीरामकृष्ण देव की पुण्य आविर्भाव तिथि एवं २२ मार्च २००२ को वार्षिक उत्सव का आयोजन किया गया। इस उत्सव के विभिन्न दिनों में रामकृष्ण मिशन आश्रम, मेदिनीपुर के सचिव स्वामी आत्मप्रभानन्द जी, श्री रतनलाल पोद्दार और श्री एस. के. पण्डित के व्याख्यान हुए। 'उद्‌बोधन' के सम्पादक स्वामी सर्वगानन्द जी ने हिन्दी भजन तथा अनेक भक्ति-गीत प्रस्तुत किये। सुकुमार बाउल ने बाउल-गान सुनाए और निखिल चट्टोपाध्याय ने महाभारत-गीति-कथा प्रस्तुत किया। इतना ही नहीं, इस अवसर पर जादू-प्रदर्शनी का आयोजन एव शिशु मन्दिर और विद्यामन्दिर का पुरस्कार वितरण कार्यक्रम भी सुसम्पन्न हुआ।